हिन्दी-ग्रन्थरत्नाकरका ५७ वाँ ग्रन्थ ।

सुहराब-रुस्तम ।

(नाट्यरङ्ग ।)

स्वर्गीय नाट्याचार्य द्विजेन्द्रलाल रायकी
बंगला नाटिकाका अनुवाद ।

अनुवादकर्ता—

चिरगाँव (झाँसी) निवासी

श्रीयुत मुंशी अजमेरी ।

प्रकाशक—

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई ।

फाल्गुन, १९८१ वि० ।

फरवरी १९२५ ई० ।

प्रथमबार ।] [मूल्य दस आने ।

सजिल्दका एक रुपया ।

प्रकाशक—
नाथूराम प्रेमी,
मालिक—
हिंदी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई।

मुद्रक—
मंगेशराव कुलकर्णी,
कर्नाटक प्रेस, ठाकुरद्वार, बम्बई।

निवेदन ।

इस पुस्तककी रचनाका एक छोटासा इतिहास है। इसके रचयिता स्वर्गीय द्विजेन्द्रलालराय एक दिन बँगलाके किसी नाट्यगृहमें अभिनय देख रहे थे। उसे देखकर उन्हें खेद हुआ। बात यह थी कि वह कुरुचिपूर्ण था। नाट्यशालाके अध्यक्षसे उसकी शिकायत करने पर उन्होंने उनसे अनुरोध किया कि आप कोई रूपक तैयार करके दीजिए। इस शर्त पर कि आप पूर्वोक्त अभिनय बन्द कर दीजिएगा, द्विजेन्द्रबाबूने ५।७ दिनमें इसे लिख डाला।

अतएव कहनेकी आवश्यकता नहीं कि इसकी रचना विशेष रूपसे इसी लिए की गई है कि दर्शकमण्डलीमें यह अच्छे भाव उत्पन्न करे। समयकी स्वल्पताका विचार करने पर यह रचना अपने रचयिताकी कवित्वशक्तिका अच्छा परिचय देती है।

किन्तु मूल पुस्तक जिस प्रकार थोड़े समयमें लिखी गई है, उससे पाठक यह अनुमान न करें कि अनुवादमें भी शीघ्रता की गई होगी। अपने विचार, अपने शब्दोंमें प्रकट करना एक बात है और दूसरेके भाव अपने शब्दोंमें प्रकट करना दूसरी बात। नहीं कहा जा सकता कि अनुवादक अपने प्रयत्नमें कहाँ तक कृतकार्य्य हुआ है।

एक बात और। मुसलमान पात्रोंके मुँहसे उर्दू भाषा उस दशामें कहलाई जा सकती थी जब कि एक दो पात्र ही मुसलमान होते। इस अनुवादमें ऐसा करनेसे यह हिन्दी अनुवाद न होकर उर्दू तर्जुमा होता। किन्तु लेखक और प्रकाशकको इसका हिन्दी भाषान्तर ही अभीष्ट था।

—अनुवादक।

मूल ग्रन्थकारकी

भूमिका।

इस नाटकका कथानक मैने फिरदौसीके ' शाहनामा ' नामक ग्रन्थसे लिया है। कथानक विख्यात है। अँगरेजी कवि Matthew Arnold ने इसी कथानक पर एक सुन्दर कविता रची है।

इस पुस्तकके रचनेका एक उद्देश्य है। कुछ दिनोंसे एक बात सुननेमें आती है कि हमारे देशके रङ्गालयोंके दर्शकवृन्द अश्लील ' हावभाव 'समन्वित ग्राम्य परिहास सुननेके लिए ही रङ्गालयोंमें जाते हैं; एवं सुरुचिसङ्गत नाटक-नाटिकाओंका आज कल कुछ भी आदर नहीं है। मै एक वार अपनी शक्तिके अनुसार परीक्षा करके देखना चाहता हूँ कि इस समय कोई सुरुचिसङ्गत ऑपेरा (Opera) चल सकता है या नहीं।

अश्लील बातोंसे या हावभावोंसे मस्त कर देना या हँसा देना कठिन नहीं। " दादा महाशयी " के ढँगका स्थूल परिहास करनेके लिए ग्रन्थकारको रसिक होनेकी जरूरत नहीं है। किन्तु उससे भी तो लोग हँसते है और परस्पर विशेष कटाक्ष करके हँसते हैं। वरन् वह परिहास जितना अधिक कुत्सित होता है उतना ही अधिक उपभोग्य। इसी लिए ऐसा सस्ता परिहास समाजमें इतना अधिक प्रचलित है।

कुरुचि संसारमें सर्वत्र ही है। इँग्लेंडमें भी अभिनेत्रियोंकी नग्नप्राय अवस्था देखनेके लिए सङ्गीतशालाएँ–Music Hall–वगैरह प्रतिरात्रि जनाकीर्ण होती हैं। किन्तु किसी गण्य मान्य थिएटरमें यदि ऐसा हो तो व्यंग्यच्छलसे तालियाँ पीटी जाती है और शीटियाँ दी जाती है। हमारे देशमें भी जब तक श्रोतृ-वर्ग इसी प्रकार कुत्सित परिहास या हावभावोंके प्रति अरुचि न दिखावेगा तब तक संस्कृत रुचिकी ओर रङ्गालयोंके कर्ताओंके अत्यधिक लक्ष्यकी प्रत्याशा करना विडम्बना है। कारण, श्रोतृवर्गको आदि रस (शृंगार) प्रचुर परिणाममें दे सकने पर ही रङ्गालयाध्यक्षोंको प्रचुर लाभ होता है, यह बात स्वतः सिद्ध है। और रङ्गालयाध्यक्षोंका स्वभावसे ही सर्व साधारणके रुचिसंस्कारकी अपेक्षा अपनी आयकी ओर विशेष लक्ष्य होता है। किन्तु साहित्यिक लोगोंका इस विषयमें

अवश्य ही कुछ कर्तव्य है। वे लोग भी यदि जातीयचरित्र और रुचिगठन करनेकी चेष्टा न करें तो अच्छा है कि बंगला साहित्य लुप्त हो जाय।

'सुहराब–रुस्तम' नियमानुसार ऑपेरा नहीं है। ऑपेरामें नाच–गानका मेल मिलानेके लिए जितनी कथावार्ता दरकार होती है–उतनी ही कथावार्ता रहती है। किन्तु इस नाटकके तीसरे अङ्कमें कथा ही उसका प्राण है; नाच–गान तो केवल उसका आनुषङ्गिक व्यापार है। फिर इस नाटकके प्रथम अङ्कमें नाच-गानका जैसा प्राचुर्य्य है वैसा किसी भी नाटकमें नहीं रहता। अतएव यह नाटक भी नहीं है। संक्षेपमें कहा जाय तो यह ऑपेरासे आरम्भ होकर क्रम क्रमसे नाटक पर समाप्त हुआ है।

चाहे जो हो, यदि यह नाटक इस प्रकारके संमिश्रणसे उपादेय हुआ–तो फिर मेरे किंवा पाठकोंके क्षोभका कोई कारण न रहेगा। यदि वस्तु अच्छी हो तो नामसे क्या आता जाता है,–विवेचनाका भार तो सदासे पाठकों पर ही है। मेरा उस विषयमें कुछ भी वक्तव्य नहीं।

श्रीद्विजेन्द्रलाल राय।

नाटक-पात्र ।

पुरुष

रुस्तम	ईरानका वीर
सुहराब	रुस्तमका पुत्र
काऊस	ईरानका राजा
तूरानका राजा	
गुस्ताहम	ईरानका दुर्गाध्यक्ष
हुजिर	गुस्ताहमका सेनापति
हुमान, बर्मान	तातार-सेनाध्यक्षद्वय
तूस	काऊसका सेनापति
जुआरा	सुहराबका मामा

सभासद, विदूषक तथा सैनिक वगैरह ।

स्त्रियाँ

तहमीना	तूरानकी राजकन्या
सारिया, हमीदा, पराग	तहमीनाकी सखियाँ
अफरीदा	गुस्ताहमकी कन्या

काऊसकी रानी, सहेलियाँ तथा गानेनाचनेवाली स्त्रियाँ ।

हिन्दीग्रन्थरत्नाकर का० द्वारा प्रकाशित पुस्तकोंकी सूची ।

(विषयोंके अनुसार ।)

नाटक ।

(द्विजेन्द्रलाल राय कृत)

दुर्गादास (ऐतिहासिक) १)
मेवाड़-पतन ,, ।॥=)
शाहजहाँ ,, १)
ताराबाई (पद्य) ,, १॥)
नूरजहाँ ,, १=)
सुहराब-रुस्तम ,, ॥=)
चन्द्रगुप्त ,, १)
सिंहल-विजय ,, १=)
राणा प्रतापसिंह ,, १॥)
सीता (पौराणिक) ॥-)
पाषाणी ,, ।॥)
भीष्म ,, १।)
उस पार (सामाजिक) १=)
भारतरमणी ,, ।॥=)
प्रायश्चित्त (मेटरलिंककृत) ।)
सूमके घर धूम (प्रहसन) ।)
अंजना (पौराणिक) सुदर्शनकृत १=)
मुक्तधारा (रवि बाबू) ॥।)

उपन्यास ।

प्रतिभा (सामाजिक) १।)
आँखकी किरकिरी ,,(रविबाबू) १।॥=)
अन्नपूर्णाका मंदिर ,, १)
सुखदास (जार्ज इलियटकृत) ॥=)
चन्द्रनाथ (शरत् बाबू) ।॥)

गल्पगुच्छ और गल्प

फूलोंका गुच्छा ॥-)
नवनिधि (प्रेमचन्द) ।॥)
कनकरेखा ।॥)
पुष्पलता (सुदर्शन) १)
श्रमण नारद (बौद्धकहानी) =)
भाग्यचक्र -)॥
सदाचारी बालक (मीर) =)॥
दियातले अँधेरा =)

काव्य ।

बूढ़ेका ब्याह (मीर) =)॥
देवदूत (पं० रामचरित) ।=)
देवसभा ,, ।-)

साहित्य और समालोचना

कालिदास और भवभूति
(द्विजेन्द्रलालरायकृत) १॥)
साहित्यमीमांसा १।=)
प्राचीन साहित्य (रविबाबू) ॥-)
अरबी-काव्य-दर्शन १।)

जीवनचरित ।

आत्मोद्धार (बुकर टी. वाशिंगटन) १)
अब्राहमलिंकन ।॥=)
कोलम्बस ।॥)
महादजी सिन्धिया ।॥=)
कावूर (मेजिनीका साथी) १)
जानस्टुअर्ट मिल ॥=)

सुहराब-रुस्तम।

पहला अङ्क।

पहला दृश्य।

स्थान—तूरानका एक वन—जिसके पार्श्वभागमें एक नदी बह रही है।

काल—सन्ध्या।

[ईरानका वीरोत्तम रुस्तम एक वृक्षके नीचे निद्रित है।]

वनदेवियोंका गीत।

वनमें कितने सुमन रहे खिल !
कुंज तरुनकी डारी डारी
प्रमुदित पल्लवपुंज मँझारी
कू-ऊ, कू-ऊ कूकत कोकिल ॥
सन्ध्या ल्याई सान्ति सकेल,
आओ सजनि, करें कछु खेल;
गीत-गंध-रंगनिसों रचि रचि—
रासि रासि हाँसीको मेल;
सन्ध्या समय छिरक जो दै हैं—
तो झोंकनि झोंकनि उड़ि जै हैं,
नभतें पुनि अवनीपै ऐहैं—
वृष्टिधार ह्वैकें सरसैहैं;
ह्वैकें आत्मलीन मनुजनके
हृदय-छेत्रमें भरि हैं,
विविध वासनायें प्राननमें
तेइ अंकुरित करि हैं;
ते अति गरब करत, अब देखिय—
कहाँ रहत है गरब अखिल ॥ (प्रस्थान।)

रुस्तम—(नींदसे उठकर।) यह क्या! सन्ध्या हो आई है! इतनी देर सोता ही रहा! ये कौन हैं?

[दो आदमियोंका प्रवेश।]

रुस्तम—तुम लोग कौन हो?

१ ला आदमी—महाशय, हम दोनों इसी पासवाले गाँवके रहनेवाले हैं। यहाँ घूमने आये हैं।

रुस्तम—क्या नाम?

२ रा आदमी—महाशय, हमारे नामोंका कोई ऐसा विशेष माहात्म्य नहीं है कि उनके बतलानेसे आप हमें और अधिक पहचान लेंगे।

रुस्तम—यह कौन सा राज्य है?

१ ला आदमी—यह तूरान राज्य है।

रुस्तम—शिकार खेलता खेलता इतनी दूर आपड़ा! इस समय लौट जाना कठिन है। —इस देशकी राजधानी कौन है?

१ ला आदमी—समनगाँ।

रुस्तम—ठीक, समनगाँ ही है। —आप लोग जायँ।

२ रा आदमी—कृतार्थ हुए।

रुस्तम—मैं भी जाऊँ।—मेरा घोड़ा? वही तो, मेरा घोड़ा रक्ष कहाँ है?

२ रा आदमी—महाशय, उसे क्या सोनेसे पहले हम लोगोंके जिम्मे करके सोये थे? (दोनों गये)

रुस्तम—ये लोग बिलकुल गँवार हैं। मुझको सलाम तक नहीं किया! यही नहीं, ऊपरसे हँसी भी कर गये! इस देशका क्या कोई भी रुस्तमको नहीं जानता?—जाकर देखूँ, मेरा घोड़ा कहाँ गया।

(प्रस्थान।)

दूसरा दृश्य ।

स्थान—पारसके एक नगरका एक ऊजड़ भाग ।

काल—रात्रि ।

[पारस्यराज काऊस और उसकी महिषी ।]

महिषी— बर्बर तातारियोंसे आज तुम हारे हो !
हा धिक् ! हा महाराज ! राज्य छोड़ अपना
भागे हो, प्रताड़ित शृगालके समान हा !
पारसके भूप तुम !

काऊस— ये ही दस्यु तातारी
अफरासियाब वीर, दुर्मति, दुर्द्धर्ष जो
ताड़ित हो रुस्तमके विक्रमसे भागे थे
उस दिन, ढूँढ़ते सुयोग थे । शिकारमें
वर्ष भरसे है रत रुस्तम महाबली
जानें किस ओर, किस अनजानें वनमें ।
जानके सुयोग दस्यु आये इस बार हैं ।

महिषी— ऐसे शीघ्र भागे तुम, हाय ! छोड़ लाजको,
पारसके भूप ! यदि रुस्तम ही अपने
विक्रमसे करता है रक्षा इस राज्यकी,
सिंहासनासीन हो तो आकर यहाँ वही ।
वृद्धसम क्षीण और कम्पित स्वहस्तमें
रखते हो राजदण्ड, रुस्तमके बलसे ।
पकड़े हैं रुस्तम तुम्हारी आह ! कफनी !
बैठे तुम गद्दी पर किन्तु तुम्हें पीछेसे

पकड़े है रुस्तम कि गिर न पड़ो कहीं !
लज्जा नहीं आती ? तुम पारसके भूप हो !
हा धिक् !

काउस— नहीं हैं महारानी, शत्रु मेरे ये
केवल तातार दस्यु; किन्तु प्रजा भी तो है
शासनसे रुष्ट, दुष्ट, विश्वासघ्न, उसने
शत्रुओंके साथ स्वयं योग दिया युद्धमें !

महिषी— बतलाओ महाराज ! आज प्रजा आपकी
दोष किसकेसे है विपक्ष-पक्ष-रक्षिणी ?
मित्र थे स्वभावसे जो, निश्छल, निरीह थे,
किसने बनाया उन्हें शत्रु ? कभी सोचा है ?
आपके असह्य उस घोर अत्याचारने !—
निर्मम, कठोर उस शासन तुम्हारेने।
बैठ राजगद्दी पर, रोषरक्त नेत्रोंसे
लौटाया प्रजाका असन्तोष और उसको
लूटनेमें दोनों हाथ व्यस्त रहे आपके !
लालायित नेत्र ये निहारा किये सर्वदा
पारस-ललनाओंको।—जैसे प्रजा आपकी
कोई नहीं, है तो एक दीन लालसाकी ही
साधनाका यन्त्र मात्र ! अथवा नियत है
मार्ग मात्र—भोगरथ दौड़नेको आपका !
शासन यही है ? राजनीति भी यही है क्या ?
—चाहो महाराज ! जो प्रजाको, प्रजा चाहेगी;
और यदि त्यक्त कर देंगे आप उसको

निश्चय है, त्यक्त कर देगी वह आपको!
रोष या घृणासे तो खरीदी नहीं जाती है
हे प्रभु, प्रजाकी भक्ति। सत्य इसे जानना।

काऊस—(सोचकर) ठीक कहती हो यदि पाऊँ पुनः अपना
लौट कर सिंहासन, तो अब करूँगा मैं,
निश्चय करूँगा राजभित्ति प्रजा-प्रीतिको;
नित्य ही करूँगा काम उसकी भलाईके।

महिषी—(जय हो, अभीष्ट पूर्ण होवे महाराजका।)

(प्रस्थान।)

काऊस— जाना जानता था महा सत्य यह पूर्व भी—
सत्य, चिर सत्य यही, तो भी भूल जाता था;
क्षमतासे उद्धत मैं जिस दम होता था;
आकर कहाँसे दुष्प्रवृत्ति जाग जाती थी;
सोचता कि मेरे अतिरिक्त इस विश्वमें
और क्या किसीका सुख हो सकता सुख है?

[तूस, सदाजि और गुदअर्जका प्रवेश।]

काऊस— तूस, पता पाया कुछ?

तूस— पाया है, शिकारमें
रुस्तम निरत दूर है तूरान प्रान्तमें।

काऊस— भेजो समाचार यही और कहो उससे
सत्वर ईरान लौट आवे वह विक्रमी;
दीन प्रार्थना है यही पारसके राजाकी!

तीसरा दृश्य

स्थान—समनगाँकी राजसभा।

काल—प्रभात।

[तूरानका राजा, पारिषदवर्ग और विदूषक।]

राजा—मेरे विचार एकदम समदर्शी हैं।

पारिषद०—एकदम बालसे बारीक—बालसे बारीक।

राजा—विदूषक, तुम क्या कहते हो?

विदूषक—महाराज! महाराजके विचार देखकर दयामयने विवेचन किया कि तूरानराज्यमें अब उनके रहनेकी और दरकार नहीं। इसीसे वे इस देशको छोड़कर चले गये हैं।

राजा—कहाँ गये हैं?

विदूषक—वह इतिहासमें लिखा नहीं है; किन्तु मालूम होता है कि वे ईरान राज्यमें गये हैं।

राजा—हाँ, ईरानका राजा काऊस बड़ा अत्याचारी है।

पारिषद०—एकदम साक्षात् डाकू!

राजा—राज्यशासन करना ही नहीं जानता।

पारिषद०—एकदम—(अवज्ञासूचक संकेत करते हैं।)

विदूषक—महाराज! राज्यशासनकी एक पाठशाला खोलिए।

राजा—राज्यशासनकी पाठशाला!

विदूषक—हाँ, उसमें सिखलाना होगा—किस प्रकार उदारनीतिका प्रचार करना चाहिए और काम करना चाहिए उसके ठीक उलटा; किन्तु दोनोंमें सामञ्जस्य रखते हुए।

राजा—ऐसा क्या कभी हो सकता है ?

विदूषक—यही तो जरा मुशकिल है । नहीं तो, सीखेंगे क्या ? इसके बाद सिखाना होगा—किस प्रकार युद्धमें प्राण देना उचित है; किन्तु युद्धस्थलसे अपने आपको भागना होगा सबसे पहले !

राजा—तुम हमारी हँसी करते हो ?

विदूषक—महाराज समझ गये, माळूम होता है ।

राजा—हम ईरानियोंके साथ गतयुद्धमें भागे नहीं थे;—किन्तु-

विदूषक—इस 'किन्तु'में ही तो गोलमाल है महाराज !

राजा—किन्तु यही रुस्तम—

पारिषद०—महाराज, ठीक आज्ञा होती है—किन्तु यही रुस्तम—

राजा—यदि उस युद्धमें वीर रुस्तम पारस्यराजका सहायक न होता तो हम उस काऊसको तो केवल लाल आँखें दिखा कर ही भगा देते । लड़ाईकी जरूरत ही न पड़ती ।

पारिषद०—लड़ाई !—ऊँहुँः, उसके साथ लड़ाई ! (हास्य)

विदूषक—यही नहीं, जान पड़ता है, ऐसा होने पर तो पारस्यराजके साथ महाराज एक वैवाहिक सम्बन्ध भी स्थापित कर आते !

राजा—संसारमें वीर हम हैं और है यही रुस्तम ।

पारिषद० (साथ साथ)—और यही रुस्तम ।

विदूषक—माळूम होता है, महाराजने अपने नामके साथ रुस्तमका नाम शिष्टताके लिए ही जोड़ लिया है ।

राजा—नहीं, रुस्तम वास्तवमें वीर है ।

पारिषद०—यथार्थ आज्ञा होती है महाराज !

विदूषक—मैंने सुना है महाराज, शास्त्रोंमें लिखा है कि वीरत्व-

नामक वस्तुको जब ईश्वरने बनाकर तैयार किया तब उसे तीन जहाजोंमें भर कर पृथ्वी पर भेजा। एक जहाज दिया रुस्तमको, एक जहाज दिया महाराजको और एक जहाज दयामयने बाकी सब मनुष्योंमें बाँट दिया।

राजा—शास्त्रोंकी बात झूठ नहीं होती।

पारिषद०—और क्या !

विदूषक—महाराज, संसारमें सभी प्रश्नोंकी मीमांसा होती है, केवल एक ही प्रश्नकी मीमांसा नहीं हो सकती।

राजा—वह प्रश्न कौनसा है ?

विदूषक—वह प्रश्न यही है कि यदि महाराजसे रुस्तमका युद्ध हो तो कौन जीते।

राजा—बाहुयुद्धमें रुस्तम हमारी बराबरी कर सकता है, सही, किन्तु तलवार पकड़ने पर नहीं कर सकता।

विदूषक—ऊँहुँः ! इस प्रश्नकी मीमांसा इतनी सहज नहीं हो सकती। महाराज, यह प्रश्न बड़ा कठिन है !

राजा—इसके सिवा, रुस्तममें बुद्धि तो है ही नहीं; परन्तु हमारी यह बुद्धि ! इस प्रकारकी बुद्धि—

पारिषद०—कहीं भी देखनेमें नहीं आती।

राजा—विदूषक, तुम क्या सोचते हो ?

विदूषक—मैं सोच रहा हूँ कि महाराजकी बुद्धिका अर्क उतारनेके लिए एक कारखाना खोला जाय।

राजा—तुम हँसी करते हो। (हास्य)

(पारिषदवर्गने भी साथ साथ हास्य किया।)

नेपथ्यमें बहुकण्ठोंसे—रुस्तम ! रुस्तम !

राजा—'रुस्तम' क्या !—यह कैसा शब्द है ! यह शब्द तो इसी ओर आ रहा है । 'रुस्तम' क्या ! (विदूषकसे) अरे ! 'रुस्तम' क्या !—यही तो; उग्रमूर्ति रुस्तम ही तो हमारी सभामें आ रहा है !—अरे ! अरे ! (छिपनेकी चेष्टा)

विदूषक—महाराज, मालूम होता है, उस प्रश्नकी मीमांसा हुई जाती है !

राजा (पारिषदवर्गके पीछेसे)—नहीं, मैं डरता नहीं हूँ, डरता नहीं हूँ; किन्तु—

विदूषक—महाराज, इस 'किन्तु'की जगह बराबर गोलमाल होता है !

[क्रुद्धभावसे रुस्तमका प्रवेश ।]

रुस्तम—राजा कौन है ?

राजा—जी, क्या हुआ !

रुस्तम—राजा कौन है ?

विदूषक—जी, इस देशका राजा कोई नहीं ।

रुस्तम—राजा कोई नहीं ? ऐसा क्या कभी हो सकता है ?

विदूषक—यह भी तो ठीक है । मालूम होता है, ऐसा तो नहीं हो सकता ।

रुस्तम—राजा कौन है ?

विदूषक—राजा कौन है !

रुस्तम—देखो, हमारा यह मिजाज खेलवाड़की चीज नहीं है । राजा कौन है, इसी वक्त बतलाओ—नहीं तो एक ही लातमें (पृथ्वी पर पैर पटकता है)—

(राजा, विदूषक और कई पारिषद पृथ्वीपर गिर पड़े ।)

रुस्तम—अब भी कहो, राजा कौन है ?

विदूषक (राजासे)—कह दीजिए महाराज! और विलम्ब न कीजिए।

रुस्तम (राजासे) —आप हैं राजा ?

राजा—जी, मुझसे क्या अपराध हुआ है ?

रुस्तम—आपके राज्यमें मेरा घोड़ा रक्ष चोरी गया है। मैं वही घोड़ा चाहता हूँ।

राजा—जी, तलाश किये देता हूँ—कुछ समय दीजिए।

रुस्तम—अच्छा, तीन दिनका समय दिया।

राजा—जी, ये तीन दिन आप—

रुस्तम—ये तीन दिन मैं यहीं ठहरकर बिताऊँगा।

राजा—अवश्य, अवश्य।

रुस्तम—मेरे भोजनका प्रबन्ध कीजिए। मेरे ठहरनेका स्थान किधर है ?

राजा—यही तो है—इस ओर आइए—इस ओर।

(रुस्तमको लेकर जाता है।)

विदूषक—बाप रे बाप! जैसा शरीर वैसा ही मिजाज! यदि एक बार और (पृथ्वी पर पदाघात), तो फिर देखना नसीब न होता। मेरा प्राण-पक्षी अभी तक हृदयके पींजरेमें फड़फड़ा रहा है! स्थिर हो, मेरे प्राण-पक्षी! स्थिर हो। डरना मत।

[विदूषक और सभासदोंका गीत।]

हमें डर लगा बहुत भारी,
कहें यदि सत्य कथा सारी—
उठे छलांग मार कर—सोचा,
आया है भूचाल!

गिरे, उठे, फिर गिरे, उठे फिर
गिरे वहीं तत्काल ।
त्रिभङ्गी तनुकी बलिहारी !
हमें डर लगा बहुत भारी ॥
मान सहित घर लौटें, फिरसे
पाये हैं ये प्राण ।
या वैधव्य निकट अति जिनका
कर लें उनका त्राण।
द्वार तो छोड़ अरे द्वारी !
हमें डर लगा बहुत भारी ॥

चौथा दृश्य ।

स्थान—समनगाँ-नरेशका अन्तःपुर ।

काल—सन्ध्या ।

[राजकन्या तहमीना और उसकी सखियाँ ।]

सखियोंका गीत ।

मुख उठाय सखि, देखहु फिरिकैं;
पोंछहु अब नैननको नीर ।
आये सखि, परदेसी साजन,—
हृदय प्रेम-मधुको जनु भाजन—
घर बैठें ही आये वीर !
सुवरन-लहर आयकें लागी
तुव तटिनीके तीर ।
अपने प्रेमहारतें बाँधहु—
कसि कुसुमनि-जंजीर ।

राखहु धेरि हृदय दैकें सखि,
मेटहु मनकी पीर ॥

तहमीना—सखियो, इतने दिनोंसे—सोते, जागते—मैं इन्हीं रुस्तमका ध्यान किया करती थी। वे स्वयं जब इस महलमें आये हैं तब कहना होगा कि दैवने ही हमें मिला दिया है।

१ ली सखी—इसका कहना ही क्या!

तहमीना—मैंने मन मनमें उन्हींको पतिरूपसे वरण किया है।

२ री सखी—क्यों सखी, तुमने उन्हें देखे विना ही पतिरूपसे कैसे वरण कर लिया?

तहमीना—देखनेकी क्या जरूरत? उनका नाम समुद्रपर्यन्त विख्यात है, उनका वीरत्व ईरान राज्यका स्तम्भ है। मैं बाहरी रूप नहीं चाहती। मैं उनके गुणोंपर मुग्ध हूँ।

[सारिया और हमीदाका प्रवेश।]

सारिया—सखी, सखी, हम देख आई।

तहमीना—क्या?

हमीदा—और क्या? तुम्हारे प्राणनाथको देख आई।

तहमीना—रुस्तमको?

सारिया—हाँ सखी!

तहमीना—किस प्रकारका देखा? कैसे हैं?

हमीदा—कैसे हैं, सो तो अच्छी तरह देखा नहीं, तब कैसे नहीं हैं, सो अच्छी तरह देख आई हैं।

सारिया—पूरी छानबीन करके।

हमीदा—सुनोगी?

सारिया—सुनो—(गाती है—)

कटिमें नहीं पीतपट, सिरपर
मोर मुकुटका काम नहीं;

हमीदा— यमुना तट या वंशीवटका,
वंशी तकका नाम नहीं ।
मुखमें मृदु मुसक्यान नहीं है,

सारिया—चरणकमल नूपुर-रव-हीन ।

हमीदा— नहीं सुवङ्किम ग्रीवा सुन्दर,
नव घन सम न श्याम तनु पीत ।
बात नहीं कहता धीरेसे,

सारिया—नहीं जानता छद्मकला ।

हमीदा— हाथ पकड़ना भूल कहीं वह,
पकड़ किसीका ले न गला !

सारिया—हँसते हँसते वेणी गह वह,
कान न मलने लगे कहीं !

हमीदा— सादर कहीं न जाय कानमें,
कहता है वह बात नहीं ।

सारिया—काला चाँद नहीं वह (देखा
जिसे किसीने कभी नहीं।)

हमीदा— काला कञ्चन नहीं (वह जिसका
हो ग्रन्थोंमें लेख कहीं।)

दोनों— नहीं मदनगोपाल, त्रिभङ्गी,
कुञ्चितकेश, अङ्ग नवनीत ।
नयनोंमें न कटाक्ष, न रमणी—
जैसे हाव, न भाव विनीत ॥

तहमीना—यह तो भारतके श्रीकृष्णकी कथा हुई। मैंने पढ़ा है।

सारिया—सो पढ़ोगी नहीं ? भारतवर्षके लोग हमारे क्या—मौसेरे भाई होते हैं।

हमीदा—और वह राज्य पारसके इतना पास है। तुम भारत-वर्षके श्रीकृष्णकी कथा यदि सुनें न रहो तो तुम्हारा तूरानकी राजकन्या होकर उत्पन्न होना ही किस कामका ? वही राधिकारमण—

सारिया—माखनचोर—

हमीदा—निपट कपटी श्याम—चोखा आदमी। किन्तु ये उस तरहके नहीं।

तहमीना—रुस्तम ऐसे नहीं है, यह जाननेसे क्या होगा। वे कैसे हैं, यही जानना चाहती हूँ।

सारिया—कैसे हैं सो सुनोगी ?

हमीदा—सुनो—(गाती है—)

वह उनका विशाल तनु, देखे
बाहु किसीने क्या वैसे !

सारिया—**उच्च ललाट, विराट-वक्ष वह**
वचन गभीर मेघ जैसे !

हमीदा—**बड़ी बड़ी मूँछें वे उनकी,**

सारिया—**वृषस्कन्ध,**

हमीदा— **सिर केश-विहीन।**

सारिया—**सखि है भाग्य मन्द तव,**

हमीदा— **जाना,**

जाना सखि, है भाग्य मलीन।

सारिया— पाओ उन्हें न यदि सुकुमारी,

हमीदा— मानें भाग्य तुम्हारा प्यारी !

तहमीना—मैंने इसी रूपकी कल्पना की थी।

सारिया—ऐं सखी !

हमीदा — क्या हुआ ?

सारिया—एक दिन उन्हें स्वप्नमें देखा था ।

हमीदा—मालूम होता है, छाती धड़कने लगी थी !

सारिया—वे मेरे और मैं उनकी—

हमीदा—और किसीकी न होगी क्या ?

सारिया—यही तो पुरुष है ! नहीं तो पुरुष यदि स्त्रियोंकी भाँति लम्बे बाल रक्खें, नाकके स्वरमें बोलें, अपाङ्ग दृष्टिसे देखें, दुपट्टा ओढ़ कर चलें और ' प्राणनाथ ' कहना शुरू करें, तो फिर स्त्रियोंको कुछ उपाय करना होगा। जो पुरुष बालोंकी और वेशकी विशेष सजावट करते हैं, उन्हें देखकर मुझे बड़ा दुःख होता है।

हमीदा—अवश्य होता है ।

सारिया—उनकी मानों सदैव यही भावना रहती है (गाती है—)

निर्दयविधिने क्यों न हमें इस
जगमें भेजा रमणी करके ।

हमीदा— सहें न किन्तु प्रसवकी पीड़ा,
दस दस मास गर्भ धरधरके ।

सारिया— पीते मधु, माला धारण कर,

हमीदा— बस, पुकारते-' हे प्राणेश्वर !'

सारिया— कसते वेणी—

हमीदा— और देखते—
प्रेमस्वप्न सुखनिंदिया लेकर ॥

[परागका प्रवेश]

पराग—सखी, सखी, सर्वनाश हो गया।

सारिया और हमीदा—क्या! क्या!

पराग—रुस्तमका घोड़ा मिल गया।

तहमीना—यह तो अच्छा ही हुआ।

पराग—किन्तु सरकारी अस्तबल तो खाली हो गया!

तहमीना—सो कैसे?

पराग—सरकारी घोड़े उसे देखकर रस्सियाँ तोड़ भागे।

तहमीना—यह क्या!

पराग—किन्तु घोड़ियोंका आचरण अन्य प्रकारका देखनेमें आया।

सारिया और हमीदा—किस प्रकारका?

पराग—सब घोड़ियोंने उसे प्यार करना शुरू कर दिया! उनमेंसे एक घोड़ीने तो उस घोड़ेके पास जाकर सलाम किया; यही नहीं, हींसकर दोनों कान झुका लिये और बाईं ओरको गर्दन मोड़कर कहा—"बड़ा सुन्दर मुख है।" रुस्तमके घोड़ेने भी दाँईं ओरको गर्दन मोड़ कर उसे बाँयें पैरसे एक थपकी दी। महाराज और रुस्तमने उन दोनोंके पारस्परिक पूर्वानुरागके लक्षण देख कर उनका विवाह कर देना निश्चित किया। इस समय दिन स्थिर करने बैठे हैं!

सारिया—क्यों सखी, कैसा हुआ?

तहमीना—क्या?

हमीदा—ये लक्षण बड़े अच्छे हैं। तुम भी इस अवसर पर यदि रुस्तमकी ओर देख कर, गर्दनको दाहिनी ओर तिरछी करके जरा मोड़ सको—

सारिया—तो सारा गोलमाल मिट जाय और एकके साथ ही दूसरा विवाह भी हो जाय ।

तहमीना—किन्तु—

सारिया—अब इसमें 'किन्तु'–'परन्तु' नहीं, एकदम 'अतएव।'

हमीदा—सखी, अब विलम्ब व्यर्थ है ।

सारिया—आओ, हम लोग तुम्हें सज्जित कर दें ।

तहमीना—यह क्या !

हमीदा—अब 'यह क्या' नहीं । चलो चलो ।

(सब सखियोंका गीत)

माधुरी मूर्ति यह कैसे कहो सजावें ?
हम सज्जा इसके योग्य कहाँसे लावें ?
हैं हीरक-हेम कठोर रजत-मणि-मोती—
क्या इनसे मनकी साध पूर्ण है होती ?
तब दें प्रात-कनक-किरणोंका,
अतुलित मञ्जुल मुकुट मनोहर ।
चपल चञ्चला घनसे लेकर,
गूँथें हार गलेका सुन्दर ॥
ले जलधि-नीलिमा अद्भुत अञ्जन साजें,
फिर चलित अपाङ्गोंवाली अँखियाँ आँजें ।
हीरोंकी आभावाले चुन चुन तारे,
सुन्दर कानोंको कर्णफूल दें प्यारे ।
पूर्ण कलाधर-रेखा-विरचित,
मृदुल करोंमें वलय विराजें ।
युग चरणोंको करके चुम्बित,
गठित विहग-रव-नूपुर बाजें ॥

दें भानु-कलाकी मञ्जु मेखला लाकर,
नवघनके स्नेह नयेसे सखि, नहलाकर।
दें वस्त्र सान्ध्य मेघोंसे रञ्जित सुन्दर,
अस्ताचलगामी रवि-निद्राका बुनकर।
देंगी युगल चरणतल जावक-
कविगायनका भक्तिविकास।
देंगी अधरराग अधरोंमें,
अभिनव प्रेम-स्वप्नका हास॥

पाँचवाँ दृश्य।

स्थान—समनगाँ-प्रासादका एक शयनकक्ष।

काल—निशीथ।

रुस्तम निद्रित है।

(नींदसे उठकर)

रुस्तम—— कैसा बुरा स्वप्न! एक चिल्लाहट है मची
दूर! है जहाज एक सागरके वक्षपै
हिल्लोलित लहरोंसे; घोर वृष्टि; आँधी है;
चञ्चलाकी चमक; तरङ्गें,–फेनराशि है;
और चारों ओर मत्त हाहाकार हो रहा।
——ऐसे ही समयमे स्वर्गीय स्वरलहरी——
क्षीण, पर उच्च, फिर फैली सब ओरको;
चारों ओर केवल सङ्गीत वह छागया
सीमाहीन। एक फिर दीर्घश्वास आगया
देवताका और उसे घेर साथ लेगया।
स्तब्ध, शान्त, सुस्थिर है पृथ्वी और व्योम भी!

पुञ्ज पुञ्ज ज्योति और राशि राशि नीलिमा
अम्बरमें दीख पड़ीं, देखा जो निहारके
देखा कि सङ्गीत वही पृथ्वी पर है पड़ा,
उस पर एक मूक हाहाकार है खड़ा !
कौन तुम ?

[हाथमें दीपक लिये तहमीनाका प्रवेश।]

तहमीना— तहमीना मैं हूँ राजनन्दिनी।

रुस्तम—है यह सङ्गीत वही।

तहमीना— वीर!—

रुस्तम— परिचित-सा,
किन्तु कभी देखा नहीं पहले इसे कहीं
कैसी मुखदीप्ति है, समस्त रङ्ग-राजियाँ
रौंद चरणोंसे, शुभ्रताके साथ रक्तिमा
प्रभुताके अर्थ वहाँ करती समर है।
यह गति—तप्त मध्य-ग्रीष्म-निशाकालमें
एक गन्धवाहोच्छ्वास—जो कि आता-जाता है
थोड़ासा हँसाता हुआ दीर्घ दीप-ज्योतिको।
दोनों नेत्र तारे प्यारे—आह ! जहाँ सोती है
घनीभूत रौद्रदीप्त प्राभातिक नीलिमा।
ग्रीवाभङ्ग—सुगठित गर्व और लज्जासे।
स्पन्दित उरोजस्थल—ऊँचा और नीचा हो
स्तब्ध नाट्य करता है जन्म-मृत्यु दोनोंका।
समनगाँ-राजसुता हो तुम ? कि देवी हो ?
क्यों फिर झङ्कार पदक्षेपमें तुम्हारे है ?
घेरे है समस्त अङ्ग स्वर्गकी सुगन्धि क्यों ?—

यह क्या दया है ! कि है एक क्रूर छलना ?
जागता हूँ मै कि स्वप्न देखता हूँ नींदमें ?

तहमीना— रुस्तम ! तुम्हारी वीरताकी सुन गाथायें
मैंने पतिरूपमें वरा है तुम्हें मनसे,
मुझसे विवाह करो।

रुस्तम— आहा ! यह भङ्गिमा !
यह स्वर ! झूठ तो कहेगी नहीं, उज्ज्वला
दृष्टि यह ! झूठ कभी कह नहीं सकती।

तहमीना— वीरवर ! बाला मै असूर्य्यम्पश्यम्रूपा हूँ
जान लो, परन्तु आज निस्सङ्कोच भावसे
आई हूँ तुम्हारे पास, जैसे पास पतिके
निर्भय, निःशङ्क वीर ! पत्नी प्राप्त होती है।
मिलन हमारी इन दोनों आतमाओंका
बाँधो तुम पुण्यतम परिणय-सूत्रमें।
सम्मति लो शूरश्रेष्ठ, मेरे पितृदेवकी।

रुस्तम— सत्य हुआ स्वप्न !— देवि ! जाकर सबेरे ही
समनगाँ-भूपतिसे सम्मति मै माँगूँगा।
मन्त्रमुग्ध सा हूँ मैं तुम्हारे मन्त्रजालसे।
—मै हूँ एक वन्यपशु, उसको मुहूर्तमें
वशमें तुम्हींने किया।—जिसके हृदयमें
रिपुकी प्रकाण्ड झंझा अव्याहत गतिसे
बहती थी इतने दिनोंसे।—उसे तुमने
एक ही मुहूर्तमें प्रशान्त किया सुन्दरी !

(तहमीनाने अपना हाथ बढ़ा दिया, रुस्तमने उसे चूम लिया।)

———

छट्ठा दृश्य।

स्थान—समनगाँ-विवाह-सभा। काल—रात्रि।

[रुस्तम और तहमीना विवाहके आसन पर बैठे हैं। विवाहका उत्सव।]

सखियोंका गीत-नृत्य।

(गीत।)

हृदय हृदयसे मिले परस्पर,
मिले आज प्राणोंसे प्राण।
उमड़, तरङ्गाकुल बहती है,
सखि हे, भावनदी अम्लान॥
जागृत वर्णोंमें मृदु गन्ध,
मधुर भावके भाते छन्द,
कम्पित स्वर-लयसे आनंद,
होता है कैसा कल गान॥
सरसकण्ठसे सधा हुआ,
स्वरसे स्वर है बँधा हुआ,
होता है कैसा कल गान॥
रूप-राशिमें शौर्य्य मिल गया,
सुमनहासमें रौद्र खिल गया,
था ऐसा आवेग महान—
किया विषाद विराग आदिका,
देखो, एक साथ अवसान॥
आज प्रणयके नव प्रभातसे,
हुआ निशाका है अवसान॥

दूसरा अङ्क।

पहला दृश्य।

महाकाल—— मैं हूँ महाकाल; मैं हूँ अन्ध, महा मत्त हूँ
पारावार; बरसोंकी लक्ष लक्ष लहरें
उठती और गिरती हैं मेरे हृद्धाममें।
मेदिनीकी भाँति मैं निकाल सब लेता हूँ
करता हूँ जो कि दान; हिंस्रजन्तुतुल्य मैं
आप निज सन्ततिको ग्रास कर लेता हूँ।
जीव-रक्त-रञ्जित घुमाता हुआ चक्रोंको
जाता हूँ चला मैं, क्षुद्र सुख-दुख उनके
तृणके समान दाब—दल कर चक्रसे।
बीस वर्ष ऐसे वह मन्द मन्द गतिसे,
जलकर है बुझा अनादि अन्धकारमें।
बीते हैं वियोगके निदाघ बीस ऐसे ही,
तप्त कर तामिना सतीके व्यर्थ प्रेमको।
रुस्तम तो पारसीय युद्धमें प्रमत्त है;
जान पड़ता है, वह आज उस प्रेयसीको——
समनगाँ-राजसुता तामिनाको भूला है;
उसके परन्तु एक पुत्र सुकुमारने
स्निग्ध रूपसे है किया आलोकित अङ्कको
दुःखिनीके, नेत्रसुखदायी सुहराबने।
सुन्दर कुमार वह जिसपै वसन्तकी
बीस ऋतुओंने स्नेहसिक्त कर ढाली है

कुसुमित रूपराशि; और बीस वर्षायें
बीत गईं, वसुधाको वारिदान करके;
—उस दिनसे है व्यवधान बीस वर्षका ।

(प्रस्थान ।)

दूसरा दृश्य ।

स्थान—समनगाँका एक अन्तःपुर ।

काल—मध्याह्न ।

तहमीना एकाकिनी । दूर दिवा दण्डायमान ।

तहमीनाका गीत ।

अन्धकारका ज्वार
यही आता है,—धीरे धीरे
सोनेका संसार
उसके कूल कूल पर छाया-
सा जाता है,—धीरे धीरे
अन्धकारके उसी ज्वारके ऊपर आकर,
डूब रहा है वह अनन्त आलोक समाकर,
दिव्य, अनन्त समयसे पूरित
हास नीलिमामें छाया;
घर घर शान्ति, सुप्ति, प्रेमामृत
वसुधातलमें सरसाया;
सन्ध्याके उस पुलके पार
ऐसे ऐसे, इसी प्रकार
देख देख पथ उनका हाय !
खड़ी खड़ी किस आशासे ।

फिर जाती हूँ मैं निरुपाय
नित्य नवीन निराशासे !

सुहराबका प्रवेश]

सुहराब—माँ हैं यही मेरी, क्यों अकेली यहाँ अब लों ?
सोचती हो क्या मा ?

तहमीना— वत्स ! कुछ नहीं सोचती ।

सुहराब—नहीं, नहीं, कहो, कहो, तुम नहीं आज ही,
जानता नहीं मैं, जैसे नित्य ही विषादसे
करती हो लालन माँ ! अपने हृदयका !
क्या दुख तुम्हें है, कहो ?

तहमीना— वत्स ! उसे दुःख क्या
पुत्र तुम जिसके हो ?

सुहराब— तो भी कहो, तो भी तो—
कारण माँ ! क्या है इस इतनी उदासीका ?
देखा है मैंने कि तुम सन्ध्याकाश ओर ही
एकटक देखती रही हो, शाम हो गई;
सूर्य्य अस्त होने पर पश्चिमके प्रान्तमें
छायाका प्रसार हुआ, तारा उठा सन्ध्याका,
धीरे धीरे धीरे फिर शिहर शिहरके
तारा-पुञ्ज-पूर्ण नभ रोमाञ्चित हो गया;
तो भी उसी भाँति देखती हो, उसी दृष्टिसे !
—कक्षमें तुम्हारे मैं गया हूँ अर्द्धरात्रिमें,
चमक उठी हो तुम निद्राहीन, कहके—
“ कौन, सुहराब ?” फिर सोच सोच जानें क्या,

आँखें भर आती हैं तुम्हारी, उन्हें पोंछके
गानें बैठती हो, जैसे कुछ भी हुआ न हो !
सहसा समेट मुझे छातीसे लगाती हो,
चूमती हो वार वार मेरा मुँह चावसे,
रोने लगती हो कभी और कभी हँसने ।
माता, दुःख क्या है तुम्हें ? शीघ्र कहो मुझसे,
दूर मैं करूँगा उसे ।

तहमीना—— वत्स सुहराब ! हा !

(सुहराबका गला पकड़कर रोती है ।)

सुहराब——क्या है माँ ! क्या है माँ ! क्या है ?

तहमीना—— वत्स ! जानता है क्या ?
तेरा पिता कौन है ?

सुहराब—— नहीं माँ ! कभी तुमने
मुझसे कहा ही नहीं !

तहमीना—— अच्छा, आज सुन ले——
तेरे पिता रुस्तम हैं ! तुझसे कहा नहीं
आज तक नाम तेरे तातका किसीने जो,
कारण यही है–मेरा सबसे निषेध था ।

सुहराब——रुस्तम ! ऐं, रुस्तम ! सुकीर्ति-नाम जिनका
ख्यात जगतीमें, वही रुस्त[illegible]
मेरे पिता !

तहमीना—— कि[illegible] नहीं [illegible]झको।
आज लों उन्होंने कभी, [illegible] वर्ष हो गये
वे हैं निरुद्देश ! वत्स, यों[illegible]

पुण्यस्मृति उनकी का ध्यान करती हूँ मैं ।

सुहराब—उनका मैं पुत्र हूँ माँ ! फिर भी हुआ नहीं
आज तक मिलन हमारा पिता-पुत्रका !

तहमीना—कहा था उन्होंने पुत्र, जाते हुए मुझसे—
"पुत्र होगा मेरे यदि, आकरमें आप ही
उसको ले जाऊँगा।"

सुहराब— परन्तु माँ, न आये वे
आज तक !

तहमीना— हाय ! वत्स, समाचार मैंने ही
झूठा भिजवाया था कि मेरे हुई कन्या है;
जान पड़ता है, नहीं आये वे अवज्ञासे ।

सुहराब—क्यों माँ ! यह झूठी बात कहलाई तुमने ?

तहमीना—वत्स, सुहराब, 'क्यों' बताना ही पड़ेगा क्या ?

सुहराब—होती नहीं झूठी बात शुभफलदायिनी
निश्चय ही अन्तमें अशुभ घटता है माँ !
कुछ भी हो, जाऊँगा अवश्य उन्हें ढूँढ़ने,
स्नेह शृङ्खलासे बाँध लाऊँगा उन्हें यहाँ ।

तहमीना—जाना सुहराब, मत

[तहमीनाके भाई जुआराका प्रवेश ।]

तहमीना— भैया इसे रोकना,
भैया ! इसे रोकना, दुहाई है ! दुहाई है !

जुआरा—रोकूँ तहमीना क्या ?

तहमीना— ये जानेको तयार है !

जुआरा—क्यों रे सुहराब, क्या है ?

सुहराब— मातुल, मैं जाऊँगा
पारस, पिता हैं जहाँ मेरे वहीं जाऊँगा;—
यह क्या विरुद्ध ! पिता-पुत्र इस जन्ममें
मिलेंगे नहीं क्या ? पति-पत्नी भी सदैव ही
रहेंगे वियोगी क्या ? उन्हें मैं खोज लाऊँगा,
जाऊँगा इसी लिए।

तहमीना— जुआरा, आज इसको
इसके पिताका नाम मैंने बतला दिया !
हाय ! बतला दिया क्यों ?

जुआरा— ठीक तो है तामिना।
रहेगा सदैव पितृहीन सुहराब क्या ?

सुहराब—एक बात और है—सुना है छोड़ रक्खा है
पारसके काऊस नामक नरपतिने
राज्य अपनेमें मुक्त स्वेच्छाचार ! आई है
उससे प्रपीड़ित प्रजाकी आर्त वेदना,
लहरों ही लहरोंसे बढ़के तूरानमें।
पारसके भूपतिका दमन करूँगा मैं
स्वेच्छाचार। मेटके प्रजाका दुःख मानूँगा।
यदि मिल जायँ पिता-पुत्र हम दोनों तो
होगा हमें कौन सा असाध्य कार्य विश्वमें ?
आज्ञा हो मुझे माँ !

तहमीना— तुझे आज्ञा वत्स, दूँगी क्या ?
जीवनका मेरे एक मात्र अवलम्ब तू !

छोड़ूँगी तुझे भी यदि, कौन सुख-हेतु मैं
जीवन धरूँगी सुत ?

जुआरा—
लौट वह आवेगा।
तहमीना, रहेगा पुत्र अञ्चल पकड़े
चिर दिन क्या माताका ?

सुहराब—
लौट फिर आऊँगा
पूर्ण मनस्काम हो तुम्हारे पद पूजूँगा।—
दो अनुज्ञा।

तहमीना—
जाओ तो पिताको पुत्र, ढूँढ़ने।
जैसी मैं तुम्हारी माता वत्स ! पिता वैसे ही
रुस्तम तुम्हारे हैं। तुम्हारी योग्य इच्छामें
बाधा मैं न दूँगी अब।—भाई, तुम साथमें
जाओ, सावधान ! सदा देख भाल रखना।
निकट विपत्ति यदि देखो कुछ वत्सपै
शीघ्र समाचार देना रुस्तमको।—उनका
पानेसे सहाय फिर डर किस बातका ?
ठहरो तनिक वत्स ! पहना दूँ तुमको
तव पितृदत्त वह अक्षय कवच मैं।

(प्रस्थान)

सुहराब—अक्षय कवच ?—कौन अक्षय कवच है ?

जुआरा—रुस्तम यहाँसे जब जाने लगे छोड़के
सौध सुहराब ! यह, तहमीना-करमें
काञ्चन-कवच एक देकर उन्होंने यों
उससे कहा था—"इस अक्षय कवचको

बाँध देना पुत्रकी भुजा पै, यदि पुत्र हो,
मेरा नाम अङ्कित है इसमें ।"

[तामिनाका पुनः प्रवेश ।]

तहमीना— वह यह है
अक्षय कवच ! (बाँधकर) वत्स ! बाँध दिया । इसको
देखते ही तेरे पिता तुझको पहचानेंगे;
जाओ तब वत्स !—जाओ, जननीके पैरोंकी
धूल सह आशीर्वाद लेके पूर्णकाम हो !

(आशीर्वाद देकर, आँखोंपर वस्त्र डालकर प्रस्थान ।)

सुहराब—जाना नहीं चाहता है प्राण छोड़ माताको,
जाना ही पड़ेगा किन्तु ।

जुआरा— चलो वत्स ! राजाकी
आज्ञा और ले लें, चलो पास महाराजके ।

(दोनोंका प्रस्थान)

[निशाका प्रवेश ।]

दिवा— जाना नहीं चाहती हूँ मैं,
समय अभी तो है मेरा ।

निशा— देख जरा, वह देख, सूर्य है
अस्ताचलगामी तेरा ।

दिवा— अभी मृत्यु कैसे आवेगी !
स्वर्णवर्ण मेरा आकाश !

निशा— देख कि क्रम क्रमसे है तेरा
होता जाता क्षीण प्रकाश !

अच्छा समय रहे जब तक,
रहना अच्छा है तब तक।

दिवा— श्यामल वसुधा और नील नभ
इन पर मेरा प्रेम महान।

निशा— प्रातःकाल मिलेंगे फिर ये—

दिवा— तो अब करती हूँ प्रस्थान ॥

[प्रस्थान]

(निशा गाती है—)

निशा— आओ, आओ, हे सखि, सन्ध्याकी तारा !
मृदु मधुर हास धारण कर मुख पर प्यारा।

शुकतारा—आलोक सिन्धु कर अवगाहन रह रह कर
मैं तिमिर-ज्वारमें आई हूँ बह बह कर।

निशा— यह सोनेका आकाश देख लो,
उज्वल कर लो अखियाँ।
धूसरता छाई जाती है,
कहो, कहाँ हैं सखियाँ ?

(अन्य गृह ताराओंका प्रवेश और गीत।)

तारा—यह देखो, सब आईं ऐसे—
नित्य रातको आतीं जैसे।

[ताराकुलका प्रवेश नृत्य-गीत।]

हम असीम आकाश बीच, गम्भीर निशामें,
गाते हैं जो गान।
बनकर झट आलोकबिन्दु, बह धरणि-दिशामें,
झरती है वह तान।

हम लोगोंको घेरे है यह
　　अन्धकार अति घोर ।
केवल अन्धकार—हाँ केवल
　　अन्धकार सब ओर !
और नहीं उस तमोराँशिमें
　　होता कुछ भी कहीं प्रतीत ।
उसमेंसे सुन पाते हैं हम
　　केवल यह अनादि सङ्गीत ॥

तीसरा दृश्य ।

स्थान—समनगाँकी राजसभा ।

काल—अपराह्न ।

[राजा और विदूषक ।]

राजा—रुस्तमका आचरण बड़ा विचित्र है। हमारी कन्यासे विवाह करके, बीस बरस हुए, वह एकदम निरुद्देश है !

विदूषक—हाँ, महाराज ! यही तो देखते हैं ।

राजा—उसका स्वभाव ऐसा ही है। जब शिकार खेलने निकलता है, आहार नहीं, निद्रा नहीं, शिकार ही शिकार करता है । जब आहार और निद्राकी ओर ध्यान दिया तब केवल खाना और सोना।-और कोई काम ही नहीं !

विदूषक—महाराज ! इस जगह उस पर डाह होती है !

राजा—और जब युद्ध चलता है तब युद्ध ही चलता है । इस

समय मालूम होता है, सुराका स्रोत चलता है। दुनियाकी और सब बातें भूला हुआ है।

विदूषक—महाराजने भी छाँटकर क्या जँमाई पकड़ा है! जिसे देखते ही मुझे नियमानुसार सर्दी-गर्मी होती है। बापरे बाप! कैसा चेहरा है!

राजा—वीरका चेहरा है!

पारिषद—हाँ, वीरका है सही; किन्तु भद्र पुरुषका नहीं। उस पर यह खामखयाली मिजाज! विवाह करके बीस वर्षसे लापता!

राजा—पारसके राजा काऊसने जो बुला भेजा था। उसे फिर सिंहासन पर बिठा कर इस समय—

विदूषक—निश्चिन्त है।

राजा—किन्तु एक बात है। वह यह कि जब हमारी पुत्रीकी कुछ खोज खबर ही नहीं लेता, तब, कहा नहीं जा सकता कि, इस प्रकारका विवाह किया ही क्यों?

विदूषक—केवल इसी प्रकारका क्यों? किसी प्रकारका भी विवाह करता क्यों, सो मैं भी नहीं कह सकता।

राजा—क्यों?

विदूषक—विवाहके बाद दो बरस तो एक तरहसे अच्छा स्वप्न देख कर कट जाते हैं; किन्तु उसके बाद ही एक ऐसी अवस्था आ जाती है कि उससे बस,—इतो भ्रष्टस्ततो नष्टः। जिसे देखो उसीके प्रति डाह होती है।

राजा—किस प्रकार?

विदूषक—यह भी एक तरहका नियमबद्ध दासत्व है। अन्तर इतना ही

है कि स्वामीका दासत्व करनेसे दो पैसे प्राप्त होते हैं और स्त्रीका दासत्व करनेसे उलटा यथासर्वस्व उसीको देना पड़ता है। इसके सिवा मूलधन पर सूदकी तरह बालबच्चोंकी संख्या बढ़ती ही जाती है।

राजा—इससे तो तुम्हारा विवाहित जविन विशेष सुखका न हुआ।

विदूषक—सुखका ? नियमानुसार दुःखका—क्या कहूँ महाराज! और बात ढूँढ़े नहीं मिलती!

राजा—सो कैसे ?

विदूषक—सुनिए—(गाता है—)

सोचा मैंने मनमें पहले
हुआ जिस समय मेरा ब्याह
क्यासे क्या हो गया अहो! मैं,
क्या कहना है अब तो वाह!
ऐसा हुआ स्वभाव कि मानों
मैं सचमुच हो गया नवाब
हैं तैयार पुलाव, कोफता
तथा कोरमाँ और कबाब
रुचता नहीं किन्तु आहार!
सोचा करता मैं कि प्रिया क्या
मुख गुलाबका-सा है फूल
देखूँगा बस जरा दूरसे
सूँघूँगा सुगन्धि सुख-मूल
करके जमा प्रेम-खातेमें
रक्खूँगा व्यय बिना किये
पलकोंमें कर बन्द फिरूँगा—

अथवा सिर पर लिये लिये
खो न जाय यह किसी प्रकार
शंका होती थी–पीछे यदि
करै प्रिया मनमें अभिमान
पर फैलाकर कहीं परी-सी
मिलै हवामें भर उड़ान !
नकलनवीस प्रेम-पेशेमें–
मस्त, नशेका था अनुराग
स्वीकृति देकर कौन प्राणसे
मिलित करै खम्माच विहाग
आहाहा ! जाऊँ बलिहार !
पीछे देखा–निरी चन्द्र–
किरणोंसे निर्मित नहीं प्रिया
भूख मिटाती नहीं वचनकी–
सुधा, जलाती वरन हिया !
किसी तरह हो, कभी, रातमें
घर आनेमें कुछ अटकाव
चलता है वह तर्क कि भागे—
बिना सूझता नहीं बचाव !
कठिन दीखता है निस्तार !
फिर देखा, जब हुआ प्रियासे
मेरा परिचय और विशेष
नहीं परीकी भाँति प्रियामें
उड़ जानेकी गतिका लेश !
उलटा चिपक गया माथेसे
गौंदतुल्य वह अनुपम रत्न

हुआ स्वर्गसे पतन—रचा था
जिसे—हुए निष्फल सब यत्न ।
यह वैवाहिक सुखका सार !

राजा—तभी तो ! तब तो कहना पड़ेगा कि व्यापार बहुत ही कठिन हो उठा है ।

बिदूषक—कठिन ? बिल्कुल—खराब !

[जुआरा और सुहराबका प्रवेश ।]

राजा—क्या भैया ! यह वेश ?

सुहराब—नानाजी, मैं बिदा लेने आया हूँ ।

राजा—बिदा ! कैसी बिदा ? कहाँ जाता है ?

सुहराब—ईरानको ।

राजा—ईरानको ? क्यों ?

सुहराब—अपने पिताके पास !

(राजाने जुआराकी ओर इशारा किया ।)

जुआरा—सुहराबको माळूम हो गया है कि रुस्तम उसके पिता हैं ।

राजा—ओः ! किन्तु उससे तो भेट होगी नहीं ।

सुहराब—मैं ढूँढ़ लूँगा !—नहीं नानाजी ! मै जाऊँगा और उस पारसराजका दमन करूँगा । वह अत्याचारी, डाकू—

राजा—यह क्या भैया ! तुमने भी अपने पिताके जैसा ही स्वभाव पाया है क्या ? पारसका राजा एक बड़ा जबर्दस्त राजा है ।

सुहराब—बना रहै, मैं नहीं डरता । मैं किसका पुत्र हूँ ! पिता और मैं मिलकर उसके स्वेच्छाचारी शासनका दमन करेंगे । अत्याचार दमन करनेके लिए ही तो बाहुबल है । नहीं तो ईश्वरने मनुष्यको शक्ति किस लिए दी है ?

विदूषक—ईश्वरने क्यों दी है सो ईश्वर ही जानें ।

सुहराब—अत्याचार जब शक्तिकी मदिरा पान करता है तब केवल एक तलवारकी ही युक्ति मानता है ।

विदूषक—शास्त्रमें भी तो है—तर्ककी प्रधानता लट्ठके हूदेमें है !

राजा—अच्छा, जाओ भैया। जुआरा, तुम भी साथ जाओ। सुहराब निरा बालक है । मैं साथमें कुछ सेना देता हूँ ।

जुआरा—हाँ, मैं भी जाता हूँ और अफ़रासियाबने हमें बारह हजार तुर्की सेना देनी कही है ।

राजा—हाँ, तब अच्छी बात है । देखो, सावधान रहना । अश्व-शालासे सर्वोत्तम अश्व छाँट लाओ ।

जुआरा—रुस्तमके उसी घोड़ेका बछेरा सबसे तेज है ।

राजा—हाँ, तब उसीको लाओ ।

पारिषद—हाँ रुस्तमका बच्चा उसके ही घोड़ेके बच्चेपर चढ़कर जाय, नहीं तो शोभित कैसे होगा ?

सुहराब—तब मैं जाता हूँ नानाजी ?

राजा—जाओ ।

(सुहराब और जुआरा राजाको प्रणाम करके जाते हैं ।)

राजा—क्या कहते हो ? भयका तो कोई कारण मालूम नहीं होता। सुहराब अच्छा वीर हो गया है ।

विदूषक—महाराज इस प्रकारका यदि कोई निश्चय हो जाय कि युद्धमें दोनों सेनायें, दो पंक्तियाँ बाँधकर, परस्पर पीछेकी ओर घूम-कर तीर छोड़ेंगी, तो सुहराब जाय, कोई भय नहीं है ।

राजा—नहीं है ?

विदूषक—नहीं, कोई भय नहीं। हाँ, यदि परस्पर आमने सामने हो जायँ, तो ऐसा होनेसे भयका कारण हो सकता है।

राजा—हो सकता है क्या ?

विदूषक—काफी। महाराज, मैं यह किसी तरह भी नहीं समझ सकता कि युद्ध पीछेकी ओर न होकर आमने सामने क्यों होता है। यह प्रथा भ्रमात्मक है। कारण, आँख नाक इत्यादि नुकसान होनेवाली सब चीजें सामनेकी ओर ही हैं।

राजा—यह तो ठीक है।

विदूषक—एक बात और भी है। वह यह कि युद्ध करते करते दोनों सेनायें परस्पर आगे क्यों बढ़ती हैं ? यदि दोनों सेनायें और कुछ न करके केवल पीछे हटती जायँ तो किसी प्रकारका गोलमाल न हो और युद्ध भी अच्छी तरह, बिना किसी विवादके हो जाय।

राजा—तुम्हारी बुद्धि तो खूब है।

विदूषक—जी, बुद्धिके जोरसे ही तो खाता हूँ। (निष्क्रान्त।)

चौथा दृश्य।

स्थान—ईरान प्रान्तका एक दुर्ग।

काल—प्रभात।

दुर्ग-सेनापति हुजिर और दुर्गाधिपति गुस्ताहम-
की कन्या अफरीदा और कुछ सैनिक।

(गीत)

हुजिर—　**सुहराब संग हैं घुड़सवार**
बलवान तुर्क बारह हजार

जहाँ सुनो यह बात वहीं।

अफरीदा—उद्देश्य समझमें उसका कुछ आता है ?

हुजिर— बस, दुर्ग जीतना ही जाना जाता है।

अफरीदा—तुम क्यों हो फिर सुस्त ? शत्रुपर
करो शीघ्र ही शस्त्राघात।

हुजिर— सोच रहा हूँ

अफरीदा— बिना लड़े ही
दुर्ग छोड़ देनेकी बात !

हुजिर— ऐसा भी क्या हुआ कहीं ?

अफरीदा—सज चर्म-वर्म, धर शिरस्त्राण
लो धनुर्बाण, भाला, कृपाण

हुजिर— जिनकी इच्छा हो, वे जाकर
करें युद्ध घमसान।

अफरीदा—सेनापति ?

हुजिर— जो चाहे ले यह
पद करता हूँ दान।

अफरीदा—देश-हितार्थ प्राण देते हैं—

हुजिर— प्राण ? प्राण तो तुच्छ नहीं।

[वृद्ध गुस्ताहमका प्रवेश।]

गुस्ताहम—देखो हुजिर ! सुहराबने यह क़िला घेर लिया है। इस समय क्या किया जाय ?

हुजिर—महाशय, यह जरासी फौज लेकर सुहराबके साथ लड़ना ठीक नहीं।

गुस्ताहम—तब लड़नेकी जरूरत नहीं।

अफरीदा—यह क्या पिता ! एक बीस वर्षके बालकसे हार मान लेनेमें लोकहँसाई जो होगी !

गुस्ताहम—यह भी तो ठीक है हुजिर! लोग हँसेंगे जरूर।

हुजिर—लोगोंके जरा हँस लेनेसे प्राण यदि बच जायँ तो इसमें लाभ ही है, हानि नहीं।

गुस्ताहम—अफरीदा, हुजिरका कहना ठीक ही है। न होगा लोग जरा हँस लेंगे, पर प्राण तो बच जायँगे।

अफरीदा—किन्तु मान खोकर प्राण!

गुस्ताहम—यह भी ठीक है। मान खोकर प्राण!—हुजिर!

हुजिर—किन्तु महाशय, यदि प्राण ही चले गये तो फिर मानका उपभोग करेगा ही कौन?

गुस्ताहम (साथ साथ)—उपभोग करेगा ही कौन? बेटी!

अफरीदा—एक बीस वर्षका बालक,—उसके निकट—

गुस्ताहम—पराजय मानें या न मानें, क्या कहें? यही तो! देखो हुजिर! इस विषयको मैं कुछ भी समझ नहीं सकता। तुम दोनों ही ठीक कहते हो। (प्रस्थानोद्यत)

अफरीदा—तब युद्ध करोगे?

गुस्ताहम—करो युद्ध।

हुजिर—किन्तु—

गुस्ताहम—तो फिर युद्ध करनेकी जरूरत नहीं।

अफरीदा—पिता!—

गुस्ताहम—देखो, मेरी बुद्धि काम नहीं देती है। तुम लोग मिलकर निर्णय कर लो। मैं युद्ध करना जानता हूँ; किन्तु युद्ध करना उचित है या नहीं, सो मेरे पिता मरनेसे पहले सज्ञान अवस्थामें, कुछ कह नहीं गये। (प्रस्थान।)

अफ़रीदा—बात जहाँ थी ठीक वहीं रही।

हुजिर—बिलकुल।

अफ़रीदा—एक कदम भी आगे नहीं बढ़ी।

हुजिर—एक कदम भी नहीं।

अफ़रीदा—देखो, तुम यदि इस दुधमुहें बच्चेसे हार मान लोगे तो मैं तुम्हें कापुरुष कहूँगी।

हुजिर—जो तुम्हें कहना हो, कहो।

अफ़रीदा—और तुम्हारा मुँह न देखूँगी।

हुजिर—इसी जगह जरा गोलमाल होता है। कारण तुम जानती हो अफ़रीदा!—मैं जो—अर्थात्—तुम्हारा—

अफ़रीदा—जानती हूँ, तभी तो कहती हूँ। नहीं तो मै तुम्हारा मुँह न देखती तो उससे तुम्हारा क्या आता जाता!

हुजिर—तो युद्ध करूँगा।

अफ़रीदा—यही तो बात है!—कर सकोगे?

हुजिर—खूब कर सकूँगा।

अफ़रीदा—अच्छी बात है। तब चलो! (प्रस्थान।)

पाँचवाँ दृश्य।

स्थान— पूर्वोक्त दुर्गके बाहर समराङ्गण।

काल—प्राह्न।

[तुर्की सेनापति—हुमान और बर्मान।]

बर्मान—देखो हुमान! अफ़रासियाबने हमें बारह हजार तातारी सेना देकर, सुहराबकी सहायताके लिए, जिस उद्देश्यसे भेजा है, उसे भूल न जाना।

हुमान—भूलूँगा कैसे बर्मान ! किन्तु वीरवर रुस्तम पारसराजका सहायक होते हुए अफरासियाबकी पारसके राजा होनेकी सम्भावना बहुत ही कम है।

बर्मान—सुहराबके साथ एक बार यदि रुस्तमका युद्ध होगा तो वह कुछ बच्चोंका खेल न होगा। देखा नहीं, कलके युद्धमें, सुहराबने दुर्गसेनापति हुजिरको बाँयें हाथकी एक झाँपड़ देकर ही बन्दी कर लिया !

हुमान—किन्तु सुहराब और रुस्तमका दैवात् यदि परिचय हो जाय तो ऐसा होने पर क्या पिता और पुत्रका युद्ध होगा ?

बर्मान—वह परिचय न होने दिया जायगा। फिर हम लोग क्या करने आये हैं ? चलो, हम लोग शिबिरमें चलें। वृष्टि होनेवाली है।

(दोनोंका प्रस्थान।)

[सुहराबका प्रवेश।]

सुहराब—समराङ्गण सूना है ! मुझे आज माताका वही सकरुण, साश्रु दृष्टिपात याद आता है। मातः ! कार्योद्धार करके शीघ्र ही फिर आऊँगा।—यह कौन है ?

[वीरवेशमें अफरीदाका ससैनिक प्रवेश।]

सुहराब—तुम कौन हो ?

अफरीदा—तुम क्या वीर सुहराब हो ?

सुहराब—हाँ बालक !

अफरीदा—मुझसे युद्ध करो।

सुहराब—तुमसे बालक ?

अफरीदा—हाँ मुझसे।

सुहराब—यह क्या दिल्लगी है ?

अफरीदा—दिल्लगी नहीं। युद्ध करो।

सुहराब—तुमसे ? कर न सकूँगा। इस मक्खन जैसे अङ्ग पर अस्त्राघात कैसे करूँगा ? और, यह मुँह तो चूम लेनेके योग्य है !

अफरीदा—व्यंग्य रहने दो। युद्ध करो।

सुहराब—बालक ! माँका दूध छोड़े तुम्हें कितने दिन हुए है ?

(अफरीदाने बिना कुछ कहे ही आक्रमण किया और सुहराबने बिजली-की तरह तलवार निकालकर वह वार रोक दिया।)

सुहराब—तुम्हारे अङ्गमें आघात न करूँगा; किन्तु अपने उष्णीष-की रक्षा करो।

(सुहराबकी तलवारके आघातसे अफरीदाकी तलवार जमीन पर गिर पड़ी और दूसरे आघातसे उसका उष्णीष गिर पड़ा तथा बँधी हुई केशराशि खुल गई।)

सुहराब—यह क्या ! तुम तो बालिका हो ! सुन्दरी, तुम कौन हो ?

(हाथ पकड़ लेता है)

अफरीदा—मैं दुर्गाधिपतिकी कन्या हूँ।

सुहराब—तभी तो कहा था न कि यह मुँह तो चूम लेनेके योग्य है !

अफरीदा—हाथ छोड़िए।

सुहराब—सुन्दरी, क्या यह भी हो सकता है ? युद्ध करने आकर तुम बन्दिनी हो गई हो। अब क्या 'छोड़िए' कहनेसे ही छोड़ दूँगा ? धर्म कैसे सहेगा ? तभी तो ! मैं सोचता था कि ऐसा चाँदसा मुखड़ा क्या पुरुषको शोभा दे सकता है ?

अफरीदा—आप क्या कहते हैं ? लोग आपके चरित्रको ओछा समझेंगे।

सुहराब—समझा करें ।—देखो वीरबाला ! मैं कोई बुरा प्रस्ताव नहीं करता हूँ; मैं तुमसे विवाह करूँगा ।

अफरीदा—सुनिए, मैं एक प्रस्ताव करती हूँ । मैं आपसे विवाह करनेको प्रस्तुत हूँ; किन्तु पिताकी अनुमति लिये बिना नहीं कर सकती । अभी बिदा दीजिए । कल पिताकी अनुमति लेकर दुर्ग समर्पण करूँगी । फिर आपसे विवाह करूँगी । मेरे पिता वृद्ध हैं । मैं उनकी एक ही सन्तान हूँ ।

सुहराब—अच्छी बात है । जाओ । किन्तु इस प्रतिज्ञाको मनमें रखना । देखो वीरबाला ! जिस प्रकार मैंनें तुम्हें बन्दिनी किया है उसी प्रकार तुमने भी मुझे बन्दी कर लिया है ! लौट कर जरूर आना ।

अफरीदा—आऊँगी । सुहराब, मैं तुम्हें चाहती हूँ ।

सुहराब—अच्छा, जाओ ।

(दोनों दो ओरको जाते हैं ।)

[दो प्रहरियोंके पहरेमें बन्दी हुजिरका प्रवेश ।]

हुजिर—मैंने देखा है, मैंने सुना है अफ़रीदा ! तुम्हारा चित्त इतना ओछा है ?—अच्छा, प्रतिफल पाओगी ।

प्रहरी—चलो जेलखानेमें ।

हुजिर—चलो ! (जाते हैं ।)

[वृष्टिधाराओंका प्रवेश और नृत्य गीत ।]

(गीत)

छम् छम्, झम् झम्, नाच नाच कर
आतीं हम नीचेकी ओर ।
जब असीम आकाश झाँप कर
पिङ्गल आभा उठे काँप कर

घुरुरुर, घुरुरुरु गरज गगनमें
करते हैं घन घिर कर घोर ।
ताताथेई झर् झर्, झर् झर्,
ताताथेई तर् तर्, तर् तर्,
शून्य गगनसे आकर सर् सर्
पड़ धरिणिके तृषिताधर पर
कर देती है उसे विभोर ।
मेघ भृकुटिकी कर अवहेला
झंझा पर चढ़ करतीं खेला
सघन गगन गरजै जिस बेला
ताली बजा बजा कर हँसतीं—
खूब मचाती हैं हम शोर ॥

[सुहराब, हुमान और बर्मानका पुनः प्रवेश ।]

सुहराब—क्या यह सत्य है हुमान ? असम्मत क्या
दुर्गपति युद्ध बिना दुर्ग निज देनेमें ?

हुमान—ऐसा ही सुना है ।

बर्मान— अभी एक दूत आया है
लेके समाचार वीर !

सुहराब— लाओ उस दूतको ।

[दुर्गपर अफरीदाका प्रवेश ।]

अफरीदा—तूरानी सुवीर ! सुनो ! अधिपति दुर्गके
मेरे पिता सम्मत नहीं हैं दुर्ग देनेमें;—
युद्ध कर जीत सको वीर ! दुर्ग जीत लो ।

सुहराब—छलना है तब तो तुम्हारी यह सुन्दरी ।

अफ़रीदा—छलना है! नारियोंका जन्म इस हेतु ही,
जानते नहीं क्या वीर? बाँधनेसे वेणीके
नूपुर पर्य्यन्त निरी छलना है, छलना!
पुरुष भुलानेके लिए ही जन्म लेती हैं;
सर्वदा इसीसे धार सुषमा उधारकी,
रहती ढँकी हैं अलङ्कारसे, सुगन्धिसे।
कितनी क्या जानती है रमणीके चित्तको
पुरुष—अबोधजाति? यह भव-माया है।
सबसे विशेष यहाँ मोहमयी माया है
मायाविनी रमणी ही,—वीर! इसे जान लो।

सुहराब—सत्य ही क्या सुन्दरि! न छोड़ोगी बिना लड़े
दुर्गको?

अफ़रीदा—　　कदापि नहीं। युद्ध हो परन्तु क्यों?
लौट जाओ, लौट जाओ वीर! निज देशको
भोगो सुख। चाहते हो शक्तिमदमत्त हो
दूसरेकी वस्तु पै स्वकीय अधिकार क्यों?

(निष्क्रान्त)

सुहराब—ऐसी बात है तो अभी होगा शत्रु-रक्तसे
रक्तिम विशेष यह सन्ध्याकाल आज का।
सुन लो, हे हुमान! बर्मान! अभी आज्ञा दो
सैन्यगण तोड़ फोड़ चूर्ण करै दुर्गको।

हुमान—होगा वही वीर!

सुहराब—　　करो अक्रमण शीघ्र ही
धूलमें मिला दो दुर्ग।

बर्मान— अच्छा !

(हुमान और बर्मान जाते हैं तथा वन्दीवेशमें हुजिर आता है।)

सुहराब— क्या हुजिर है ?

हुजिर— वीरवर ! आपने निदेश निज सैन्यको
दुर्ग तोड़-फोड़नेका दे दिया है आज क्या ?

सुहराब—दिया है।

हुजिर— विशेष होगा सैन्यक्षय।

सुहराब— होने दो,
चिन्ता नहीं।

हुजिर— किन्तु है उपाय एक सीधा-सा।

सुहराब—क्या है ?

हुजिर— एक ठौरपै किलेकी भींत कच्ची है,—
रक्षाहीन, शीर्ण, जीर्ण-शीघ्र टूट जावेगी।

सुहराब— जानते उसे हो तुम ?

हुजिर— खूब जानता हूँ मैं।

सुहराब— अच्छा, साथ आओ, दिखलाओ वह मुझको।
[निष्कान्त]

छठा दृश्य।

स्थान—इसी दुर्गका भीतरी भाग।

काल—रात्रि।

[तूर्य्यध्वनि हो रही है। कई सैनिक खड़े है। अफरीदा प्रवेश करती है।]

अफरीदा—सैनिको ! युद्ध आरम्भ हो गया ! मेरे वृद्ध पिता दुर्गकी प्राचीर पर खड़े होकर स्वयं युद्धकी देखभाल कर रहे हैं। तुम लोग इस दुर्गकी रक्षा करोगे ?

सैनिकगण—प्राण दे देंगे पर किला न देंगे ।

अफरीदा—यही तो वीरोंकी बात है । युद्ध करो ! युद्ध करो !

(सैनिकोंका प्रस्थान ।)

अफरीदा—वीरता विचित्र है !—तुम्हारी वीर ! मुग्ध मैं
शौर्यसे तुम्हारे सुहराब ! हुई । सत्य ही
आप अपनेको तुम्हें सौंप चुकी !—कैसी है
मधुर मनोज्ञ दृष्टि ! अनुपम भङ्गिमा !
कैसा स्वावलम्बन ! उदार अनुकम्पा है !
वीर सुहराब !—नहीं, तो भी तुम शत्रु हो;
निज अनुराग यह दमन करूँगी मैं ।
नारी हूँ, करूँगी रुद्ध प्रेमके प्रवाहको
हृदय-कपाट बीच, डाल लोह-अर्गला ।—
युद्ध चाहती हूँ बस, युद्ध चाहती हूँ मैं ।

[घबराये हुए एक सैनिकका प्रवेश ।]

सैनिक—सर्वनाश हो गया ।

अफरीदा—क्या ?

सैनिक—सुहराबके बाणसे विद्ध होकर दुर्गाधिपति प्राचीरसे गिर पड़े हैं ।

अफरीदा—क्या ! पिता ?

सैनिक—उनके बचनेकी आशा नहीं है । आप शीघ्र जायँ ।

(अफरीदाका प्रस्थान और एक दूसरे सैनिकका प्रवेश ।)

२ रा सैनिक—अब रक्षा नहीं है !

१ ला सैनिक—क्या हुआ ?

२ रा सैनिक—शत्रु दुर्गमें घुस आये!

१ ला सैनिक—किस तरह?

२ रा सैनिक—दुर्गका जीर्णस्थान भग्न करके।

१ ला सैनिक—उस ओरसे तो कभी किसी शत्रुने आक्रमण नहीं किया। इन्होंने जाना कैसे?

२ रा सैनिक—माळूम होता है, यह काम वन्दी सेनापति हुजिरका है।

[कुछ सैनिकोंके साथ अफरीदाका पुनः प्रवेश।]

अफरीदा—सैनिको! मेरे पिता अब इस संसारमें नहीं हैं। हुजिरने दुर्गके उस जीर्णस्थानका पता शत्रुको बतला दिया है।

सैनिकगण—अब उपाय क्या है?

अफरीदा—और कोई उपाय नहीं है, चलो, हम लोग गुप्तद्वारसे भाग चलें। पकड़ाई न देंगे। और, आज मरेंगे भी नहीं। इसकी प्रतिहिंसा चाहिए। रात्रिके इस निबिड़ अन्धकारमें चलें, इसी क्षण हम लोग भागें।—आओ, शीघ्र आओ। (सैनिकोंसहित प्रस्थान।)

[थोड़ी देर बाद सुहराब, हुमान, बर्मान और सैनिकोंका प्रवेश।]

सुहराब—सूना दुर्ग!

बर्मान— भाग गई सेना गुप्तद्वारसे
जो कुछ बची थी वीर!

सुहराब— दुःख नहीं इसका,
जीत लिया दुर्ग।—किन्तु भागी वीरबाला है
धूल झोंक आँखोंमें! हुआ क्या इस दुर्गके
जीतनेसे लाभ? चलो, लौट चलें घरको।

बर्मान— कैसी यह बात वीर ! कैसे लौट जायँगे
भारी इस जीतके सु-निर्मल प्रभातमें ?
महिमाकी एक रश्मि दुर्गके कँगूरे को
चूमती है, पूर्ण ज्योति दीखती है उसकी
देखो वह ! छोड़ इसे कैसे लौट जायँगे ?

हुमान— कैसी बात वीर ! महायुद्धको निकलके
कैसे, बीचहीसे, अब लौट तुम जाओगे ?
क्या नहीं हँसेंगे शत्रु ? क्या नहीं कहेंगे वे—
" देखकर शौर्य्य एक पारसीय नारीका,
डर सुहराब बीचहीसे लौट भागा है ?"
अथवा कहेंगे शत्रु करते हुए हँसी—
" लौट गया बच्चा वह माँका दूध पीनेको ! "

बर्मान— लौटना असम्भव है ।

सुहराब— ठीक कहा तुमने;
मैंने किन्तु चाहा था विशेष वीर बालाको
मित्र !

हुमान— युद्ध पूरा करो, वीर ! उसे मुट्ठीमें
पाओगे ।

बर्मान— गई है वह पारस-महीपके
आश्रयमें; युद्ध कर, पारसको जीतके
निश्चय है, फिर भी करेंगे उसे वन्दिनी ।

सुहराब—ठीक बात !
वीरगण ! अ गे बढ़ो शीघ्र ही;

कर दो चढ़ाई अभी, तूर्य्यध्वनि होने दो;
पारसका भूप सुनें शब्द बैठ गद्दीपै।

(सैनिकोंका गीत।)

बजै भयङ्कर भेरी, झंडा—
उड़ै मृत्युअंकित वह लाल!
नर-शोणितसे रञ्जित होकर
नाचै विजय नाच विकराल!
घूम जाय विधिका विधान वह,
नारी आज और कल यम।
बस, रोदन ढँक रखनेको ही
बजती भेरी झम् झम् झम्॥
भेरी बजती है झन् झन्
चक्र घूमते हैं सन् सन्
साथ न हाहाकार किसीका उठै कहीं,
तो होता सुख पूर्ण नहीं।
बलिहारी परमेश! तुम्हारी, किन्तु अभी
रहने दो वह बात वहीं॥
जीवन होगा मृतक, मरण जी जावेगा;
रोवेगा फिर गान, रुदन तब गावेगा;
नभके तारे टूट पड़ेंगे,
धूल उड़ेगी पंख पसार।
बजै भयंकर भेरी झन् झन्,
सन् सन् घूमें चक्र अपार॥

सातवाँ दृश्य ।

स्थान—गभीर अरण्य ।

काल—सन्ध्या ।

[अफरीदा एकाकिनी ।]

अफरीदा—निर्जन, निस्तब्ध कैसा विकट अरण्य है !
सिंहनाद केवल सुनाई कभी देता है
दूर; सुन पड़ता है सलिलप्रपात भी ।
पल्लवित वृक्षराजी आपसमें बाँधे है
एक दूसरेको फैले दीर्घ बाहु पाशमें,
जैसे किसी भीतिसे; सविस्मय है देखती
मानों चुपचाप खड़ी अपनी ही छायाको !
फिरते हैं वन्यपशु । पर्वतके प्रान्तमें
मन्थर गतिवाले हैं अजगर घूमते ।
आगई कहाँ हूँ हाय ! निस्सहाय नारी मैं !
कहाँ पिता मेरे ? कहाँ उच्चचूड़ दुर्ग है ?—
दुर्ग दृढ़भित्ति वह—शैशवका पालना !
यौवनका स्नेहकुञ्ज !—स्वजन कहाँ हैं वे !
केवल बचे हैं पाँच सैनिक—जो सोते हैं
पथश्रान्त, दूर वहाँ, नीचे उस वृक्षके ।
चिन्ताशून्य सखियाँ हैं तटिनीके तटपै
हास्य-गल्प-क्रीड़ारत, जानें किस सुखमें ! —
कोई भी, कहीं भी मानों घटना घटी नहीं !
जानती नहीं हूँ, किस बिधिके विधानसे
दुःख यह भी है सहा; किन्तु यह घाव क्या

भर सकता है कभी ? मेरा तो कभी नहीं।
आज भी पिताका वध सालता है वक्षमें
शूल-सम वैसा ही। उसीके साथ वैसी ही
जागती है पूर्व प्रतिहिंसा इस चित्तमें।
और—और क्या मैं कहूँ—नित्य सुहराबका
नम्र मुख, स्नेहसिक्त वाणी याद आती है।
और, मेरे दोनों नेत्र डूबते हैं नीरमें!

(गाने लगती है—)

आँखें क्यों भर भर आती हैं?
क्यों आती है उसकी याद?
उसी ओर मन क्यों जाता है—
फिर फिर कर? कैसा उन्माद!
वह तो मेरा कभी न होगा,
फिर क्यों है यह प्रेम अगाध?
वह नभ-शशि है, सागर-मणि है,
फिर भी क्यों पानेकी साध?
हम दोनोंके बीच खड़ा है—
पर्वत, फिर क्यों वाद-विवाद?
छाये लेता है हा! मनको
आकर यह महान अवसाद!

[सखियोंका प्रवेश।]

१ ली सखी—सोचती हो बैठ क्या अकेली तरुतलमें?

अफरीदा—सोचती हूँ,—सोचती हूँ मै कि कहाँ जाऊँगी।

२ री सखी—यमपुर नामवाली एक ठौर है सुनी
सुखका निवास वहाँ—

अफ़रीदा—　　　　　　　　　　रोको परिहासको ।

३ री सखी—चिन्ताकुल अन्तरमें निरन्तर एक-सी
　　जलती है अग्नि सखी, जिसके क्या उसको
　　अच्छी लगती है हँसी !

२ री सखी—　　　　　　　　　चाहती थी दाबना
　　वही तीव्र अग्नि सखी, इस परिहाससे ।

अफ़रीदा—　रख दो पहाड़ सखी, उसके दबानेको,
　　होके भस्म तो वह तुरन्त उड़ जायगा !

४ थी सखी—चिन्ता करो दूर, होगा रातका प्रभात भी,
　　मेघ हट जायँगे ।

अफ़रीदा—　　　　　　　　　पिताके वधका सखी !
　　जबलौं नहीं मैं प्रतिशोध कर पाऊँगी
　　और उस विश्वासघ्न, पातकी हुजिरको
　　दण्ड दे सकूँगी नहीं अपने ही हाथसे,
　　जलूँगी, जलूँगी मैं ।

५ वीं सखी—　　　　　　　　परन्तु सत्य कहना—
　　प्रेम नहीं करतीं क्या तुम सुहराबको ?

अफ़रीदा—प्रेम करती हूँ मैं अवश्य उस वीरको !
　　चाहती छिपाना नहीं ।—चाहती हूँ उसको।
　　पैरोंपर उसके मैं प्राण डाल देती ये
　　अनायास, होता वह देशका न शत्रु जो ।
　　शत्रु जो स्वदेशका है, शत्रु वह मेरा है—
　　चाहे वह मेरा पिता, भ्राता, पति क्यों न हो ।

दोनों नेत्र फेंक दूँ निकाल कर अपने
जो वे कहें—"ना, वह हमारा शत्रु है नहीं।"
हृदय निकाल फेंक दूँगी यदि चाहेगा
करना, इशारेसे भी, आलिङ्गन उसका।
मेरे देशका जो मित्र होगा, वह मेरा हो
चाहे घोर शत्रु ही, परन्तु मित्र मेरा है—
विजातीय भी हो वह, किन्तु मेरे देशको
करता हो सच्चा प्रेम, आलिङ्गन उसका
आग्रहके साथ मैं करूँगी उसे खींचके।
और सुहराब? उसे भैरव समुद्रके
भीषण उच्छ्वासतुल्य उठकर चाहती
भग्नकर ग्रास कर जाना; चाहती हूँ मैं
छातीसे लगाना वन्य भल्लुकीकी भाँति ही
श्वास रुद्ध करनेको उसका; असूया-सी
तप्त भर्त्सनासे जला देना चाहती हूँ मैं।

४ थी सखी—और जो हुजिर तुम्हें प्रेम करता है सो?

अफरीदा—प्रेम करता है? प्रेम कहती इसीको हो?
नक्र पहुँचावें खोद नाली तपोवनमें;
रक्खे कालसर्प लाके नीचे उपाधानके;
पीछेसे अचानक जो आके गला घोंट दे;
प्रेम करता है वह?

१ ली सखी— यह तो असूया है।

अफरीदा—हो; परन्तु प्रेम वह हो ही नहीं सकता।
योजनोंका अन्तर है प्रेमसे असूयामें।

मारती असूया और प्रेम प्राण देता है ।
प्रेम क्या यही है ? और हो भी सखी, तो भी जो
अतिथि अनेक सुख भोगे जिसके यहाँ
जहर मिला दे फिर उसी अन्नदाताके
अन्नमें; उसे मैं देखती हूँ घृणादृष्टिसे;
ऐसे नीच प्रेमी पर लात मारती हूँ मैं ।
विश्वासघ्न—पापी और ऐसा हेय विश्वमें
कौन होगा ? प्रस्तुत हो सखियो, ईरानको
चलो, चलें । बैरियोंसे बदला चुकानेको ।

(सखियाँ गाती हैं—)

हम ईरानी वीर नारियाँ
चलो, चलें हम यहीं सभी ।
उठें खूब रणरङ्गतरङ्गें,
नहीं युद्ध निःशेष अभी ॥
नहीं समाप्त एक रणसे यह
एक हारसे नष्ट न देश ।
एक बार यदि हुई विफल, फिर
नव आयोजनका उद्देश ॥
साज वर्मसे यह उत्तम तनु,
कोमल करमें लेंगी शर-धनु;
चपला तुल्य चमक कर, जलकर,
चकाचौंध आँखोंमें भर भर,
पुनः करेंगी गढ़-अवरोध,
लेंगी हम लेंगी प्रतिशोध;
सुन तूरान !   सुन ईरान !

रमणीगण,
करता है दृढ़ प्रण;
उड़े निशान! बजे विषाण!
मान-रहित जीवनको धिक है,
भूल न जाना इसे कभी।
हम ईरानी वीर नारियाँ,
चलो, चलें हम वहीं सभी॥

तीसरा अङ्क।

पहला दृश्य।

स्थान—रुस्तमका गृह।

काल—रात्रि।

[रुस्तम बैठा सुरापान कर रहा है।
सामने नृत्य-गान होता है।]

गीत।

सुख-स्रोतमें कर देंगी हम
आज निमग्न वीरके प्राण।
नील गगन, श्यामल भूतलको
छा देंगी गा गा कर गान।
श्रवण करेंगी तारकमाला,
मनुज मात्र होगा मतवाला,
होगा आपाभूल विश्वमें
जो होगा जिस जगह निदान।
गिरि, वन, खग, मृग-वृन्द नचैगा,
आप मरण भी आज बचैगा,
सब दुख डूब गया है सुखके
गीत-सुधाका करके पान॥

(प्रस्थान।)

रुस्तम—ये प्राण डूबे हुए हैं, सबेरा होता आता है! मनमें कुछ भी नहीं है। मैं कौन हूँ?—हाँ, मैं रुस्तम हूँ। मैं पारसका वीर हूँ। इसके बाद—अच्छा! मैंने तूरानकी राजकन्या तहमीनासे विवाह किया था न? हाँ, किया तो था! मानों एक स्वप्न देखा था। पीछे

स्वप्न भङ्ग हो गया। एक युद्धमें आया। इसके बाद सब भूल गया। नहीं, इस प्रकार तो स्मरण होता है।—कौन है ?

[एक दूतका प्रवेश।]

दूत—मैं पारसराजका दूत हूँ।

रुस्तम—क्या चाहते हो ?

दूत—महाराजने आपको स्मरण किया है।

रुस्तम—क्यों ?

दूत—सो मैं नहीं जानता।

रुस्तम—अच्छा जाओ, मैं आता हूँ।—वही फिर गाओ ! नहीं, सोऊँगा। (निष्क्रान्त।)

दूसरा दृश्य।

स्थान—पारस्यराज काऊसकी राजसभा।

[सभासदवर्ग। राजा सिंहासनारूढ़। पार्श्वमें मन्त्री, सेनापति तूस, सदाजि और गुदअर्ज खड़े हैं।]

काऊस—सचमूच सङ्कट है !

तूस— कठिन समस्या है।

सदाजि—बच्चा बीस वर्षका है—

गुदअर्ज— दाढ़ी-मूँछ भी नहीं !

तूस—मानते हैं बात यह सभी एक वाक्यसे—
ऐसा वीर और नहीं एक भी भुवनमें
पैदा हुआ।

सदाजि— रुस्तम ही उसके समान है,

एक मात्र रुस्तम ही ।

गुदअर्ज— हो या न हो वह भी ।

काऊस—रुस्तम कहाँ है मन्त्रि !

मन्त्री— देखा नहीं उनको ।

काऊस—यह व्यवहार साथ पारसके भूपके !
समाचार भेजे आज चार दिन हो गये ।

मन्त्री— गुरु अपराध ! यह गुरु अपराध है !

[महिषीका प्रवेश ।]

महिषी—महाराज ! समाचार सुनती विचित्र हूँ—
एक सुकुमार शिशु जो है बीस वर्षका
पारसका राज्य जीतनेके लिए आया है;
और सुनती हूँ,—सुन इसी समाचारको
अस्थिर, भयाकुल-से पारसके भूप हैं;
भीत, त्रस्त, कम्पित हैं—जैसे वायुवेगसे
शस्यशीर्ष । पारसपते ! क्या यह सत्य है ?

काऊस—आता सुहराब है हाँ, किन्तु नहीं भीत मैं ।

महिषी—फिर क्यों अचल तुम पंगु सम अब भी
राजसिंहासनारूढ़ ? आगे बढ़ो युद्धको ।

काऊस—महारानी ! रुस्तमको भेजा समाचार है ।

महिषी—कब ?

काऊस— दिन चार हुए ।

महिषी— दीखता तो है नहीं
रुस्तम, कहाँ है वह ? है नहीं सभामें तो !

काऊस—वीर वह अबलौं सभामें नहीं आया है !

महिषी—ठीक है ! तो आमरण उसकी प्रतीक्षामें
बैठे क्या रहेंगे आप ? भीख माँग उससे
करुणाकी चिरदिन, आप भूप होके भी
आज्ञावह उसके रहेंगे क्या ? मनुष्य जो
तुच्छ मानता है राजआज्ञाको अवज्ञासे ?
उसकी कृपाके तुम भिक्षुक सदैव हो
महाराज ! याद है ? प्रताड़ित हो पूर्वमें
निर्वासित आप निज राज्यसे हुए जो थे ?
की थी क्या प्रतिज्ञा नहीं—"राज्य यदि पाऊँगा
लौटके तो साधूँगा प्रजाकी प्रीति सर्वदा ?
शासन करूँगा अभिषिक्त अनुकम्पासे
न्यायमन्त्र धार ?" प्रतिज्ञा अब क्या हुई ?
अत्याचार पूर्वकी अपेक्षा आज सौगुना
हो रहा है; महाराज ! हाहाकार राज्यमें
अत्याचारसे है चारों ओर ! याद रखिए
सह सकती यों नहीं प्रकृति सदैव ही
ऐसा क्रमभङ्ग निज नियम महानका।
रैयतका शाप दिन रात उठे ऊँचा तो
निष्फल कदापि नहीं होता ! इस पापके
पुञ्जका अवश्य आप प्रतिफल पायेंगे। (प्रस्थान।)

काऊस—सेनापति !—जाओ तुम, साँकलमें बाँधके
लाओ उस उद्धतको, रुस्तमको सामने।

[रुस्तमका प्रवेश ।]

सब— यही है, यही है, वीर रुस्तम यही तो है !

काऊस—रुस्तम ! बुलाया तुम्हें चार दिन पूर्व ही
मैंने था सभामें । तुम हाजिर हुए नहीं !
जान पड़ता है, तुम्हें समय नहीं मिला ?

रुस्तम—महाराज ! सत्य बात, समय नहीं मिला ।

काऊस—यह कह देना है तुम्हारा अहङ्कार ही ।

रुस्तम—मेरा अहङ्कार भूप ?

काऊस— चाहता हूँ तुमसे
इसकी मैं कैफियत !

रुस्तम— काऊस ! ये क्या कहा ?
कैफियत सामने तुम्हारे कभी दूँगा मैं ?

काऊस—देगा नहीं ? बाँधो गुदअर्ज, इसे शीघ्र ही—
रुस्तम ! सजा दी तुम्हें मैंने प्राणदण्डकी ।

रुस्तम—पारसके राजा ! तुम जानते नहीं हो क्या
मुझको ? मैं रुस्तम हूँ ! जिसके प्रसादसे
भोगते हो राजसुख तुम इस राज्यका !
तुमको हटाके बाँयें पैरके अँगूठेसे
छीन लेता सिंहासन—राज्य यदि चाहता ।
भूल गये ? वारंवार विपद तुम्हारीमें
रक्षक तुम्हारा रहा बाहुबल किसका ?—
नीच ! अकृतज्ञ ! तुम दण्ड देने बैठे हो
रुस्तमको ?—अच्छा, अब विक्रमसे अपने

रक्खो यह सिंहासन। मैं भी जरा देख लूँ।
कितने बड़े हो शूर वीर तुम।—देख लूँ।
चलता हूँ मैं, अब अगण्य यह तातारी
सैन्य इस देश बीच हाहाकार फैला दे,
विप्लव मचा दे। देखें, रक्षा करो देशकी।—
लात मारता हूँ मैं तुम्हारी इस डींग पै,
साथ ही तुम्हें भी, लो, कर सको जो कर लो।

(प्रस्थान।)

सदाजि—महाराज! यह क्या अनर्थ किया आपने?

काऊस—महाराज!

मैं हूँ महाराज! मैंने आज्ञा दी
रुस्तमको बाँधनेकी, बाँधा उसे किसने!
चला गया लात मार!

तूस— महाराज! आपने
भूल की। सभामें अपमान किया वीरका!

[सैनिकों और सखियोंके साथ अफरीदाका प्रवेश।]

अफरीदा—महाराजकी हो जय

काऊस— कौन तुम हो, कहो!

अफरीदा—गुस्ताहमकी हूँ सुता पारस महीपते!
नाम अफरीदा।

काऊस— यहाँ आई किस हेतुसे?

अफरीदा—नाम सुहराब—वीर बालक है—उसने
किया है पिताका वध और दुर्ग उनका

जीत लिया । पारसके राज्यपै चढ़ाईका
करता है आयोजन । आई हूँ इसी लिए
राजचरणोंमें समाचार यही देनेको ।

काऊस—देशका प्रवेशदुर्ग जीत लिया शत्रुने ?
सच्ची बात ?

अफरीदा—　　　　महाराज ! सच्ची बात । और भी—
दुर्गपति, मेरे पिता, निहत हुए वहाँ ।
प्रस्तुत हों आप । सहसैन्य हम लोग भी
करेंगे चढ़ाई शीघ्रतासे बालवीरपै;
करेंगे ससैन्य दुर्ग फिर अधिकारमें ।

काऊस—यत्न ?

गुदअर्ज—　　　वीर रुस्तमको लौटाओ महीपते !
अनुनय युक्त—

तूस—　　　　　　　　उस वीर वरके बिना
भस्मीभूत होगा देश ।

काऊस—　　　　　　　किन्तु अपमान जो—

सदाजि—समय नहीं है यह उसके विचारका ।
लौटाओ अनुनयसे रुस्तमको शीघ्र ही ।

काऊस—लौटाऊँ अनुनयसे ?

तूस—　　　　　　　　　विनय विशेषसे ।
अन्यथा न लौटेगा बड़ा ही वीर मानी है
रुस्तम ।

काऊस— वही हो तब; मन्त्रिवर ! शीघ्र ही
जाके मना लाओ उसे विनय विशेषसे।
मेरी ओरसे भी कर देना क्षमा-प्रार्थना।
(सब जाते हैं।)

तीसरा दृश्य।

स्थान—उसी दुर्गका शिखर।

काल—प्रभात।

[शिखरपर सुहराब और हुजिर खड़े हैं।]

सुहराब—देखते हो शिबिर हुजिर ! वह शत्रुका ?
हुजिर—देखता हूँ !
सुहराब— जानते हो ?
हुजिर— जानता हूँ। यह जो
मण्डप है, जिसपै पताका सूर्य्यमण्डिता
उड़ती है; पट्टवस्त्र रत्नोंसे जड़े हुए
झूलते हैं दोनों ओर चूमकर भूमिको
शत शत, रौप्यरज्जुबद्ध, मुख्य द्वारपै ?
दीखता है रम्य रत्नसिंहासन बीचमें—
फैलती हैं किरणें अपूर्व नील आभाकी
चारों ओर; यह जो शिबिर मध्य सैन्यके,
सूँड़ोंको हिलाते हुए सौ सौ गज झूमते
घेर जिसे, मण्डप है पारसके भूपका
वीर सुहराब ! यही।
सुहराब— और वह सामने—
चारों ओर घूमते हैं प्रहरी हजारों जो

अश्वारूढ़, स्फीतवक्ष, स्वर्ण-वर्म्म पहने,
मानों रणहेतु सभी उद्यत, नियत हैं ।
जानते हो वीर ! वह किसका शिविर है ?

हुजिर—पारसके सेनापति तूसका शिविर है ।

सुहराब—और वह रक्तवर्ण किसका शिविर है ?

हुजिर—लोहित शिविर वह, सम्मुख हैं जिसके
दीर्घाकार, रक्तनेत्र, भृकुटि चढ़ाये वे
तीक्ष्ण भल्लधारी बहु सैनिक खड़े हुए,
प्रातःसूर्यकिरणोंसे वक्षस्त्राण जिनके
झलमल करते हैं;—शिविर सदाजिका
वीर सुहराब ! है यही कि जिस वीरका
दूसरा नहीं है व्रत वीर व्रतके सिवा;—
जानता है युद्ध मात्र ही जो, कभी युद्धमें
जानता विराम नहीं, तीव्र दृष्टि जिसकी
करती है अग्निवृष्टि घोर रणक्षेत्रमें !

सुहराब—समझा हुजिर । और यह जो शिविर है ?

हुजिर—पीतवर्ण ?

सुहराब— ना हुजिर ! श्यामवर्णवाला जो
सेंभलके वृक्षवाले प्रान्तमें, खुला हुआ
चारों ओरसे वह विराजमान जिसमें
दीखता है वीर घिरा मन्त्रियोंसे, स्थिर जो
दीर्घदेह, गौरकान्ति और साम्य मूर्ति है,
किसका शिविर यह—जिसके शिखर पै
उड़ती पताका जो गरुड़चिह्नवाली है;

जिसके समक्ष वह उद्धत अधीर-सा
हींस रहा उच्च, श्वेत, अद्भुत तुरग है ?

हुजिर—जानता नहीं हूँ नाम, एक चीन-वीर है।—
और देखते हो पीतवर्णका शिविर जो
रत्नोंसे खचित, व्योमचुम्बी, वह जिस पै
व्याघ्राङ्कित ऊँची ध्वजा काँप रही, और वे
अगणित क्रीतदास हैं खड़े हुए जहाँ,
शिविर सदाजि-सुतका है वह—जीबूका।

सुहराब—नहीं नहीं चीन-वीर है वह कभी नहीं!

हुजिर—शिविर सुशुभ्र वह, पट्टवस्त्र जिसका
काँपता है मारुतसे, काऊस नृपतिके
वीरपुत्रका है वह शिविर महामते!

सुहराब—नहीं नहीं, गौरकान्ति जो सुवीर बैठा है
श्यामल शिविर बीच, क्या है नाम उसका ?
सत्य कहो, बदलेमें तुमको हुजिर! मैं
मुक्त कर दूँगा।

हुजिर— नाम ज्ञात नहीं उसका।
ज्ञात होता तो भला छिपाता किस हेतु मैं ?

सुहराब—हैं नहीं क्या वीरवर रुस्तम वे ?

हुजिर— जी, नहीं।

सुहराब—वीर वर रुस्तमका शिविर कहाँ है तो ?

हुजिर—दीख पड़ता तो नहीं!

सुहराब— सत्य कहो वीर ये
रुस्तम नहीं क्या ?

हुजिर— सुहराब ! जानता हूँ मैं
उनको, वे आये नहीं युद्ध बीच ।

सुहराब— सत्य ही ?
देखो, सत्य सत्य कहो, दास्यमुक्त करके
दूँगा बहु स्वर्ण; वही दूँगा मैं कहोगे जो !
जानते हो रुस्तमको ? सत्य सत्य कहना ।

हुजिर—वीर सुहराब ! इस पारसमें कौन है,
वीरवर रुस्तमको जानता हो जो नहीं ?
जाते है जहाँ वे, वहाँ उनसे प्रथम ही
उनकी सुकीर्ति सब ओर फैल जाती है ।
होते हैं खड़े वे जहाँ आके सब लोगोंमें,
जान पड़ता है, उच्च पर्वतका शृङ्ग है
पत्थरके ढोकों बीच दर्पसे खड़ा हुआ !
जानूँगा नहीं मैं उन्हें ? वीर ! बात है यही—
आये नहीं युद्धमें वे ।

सुहराब— अच्छा, तब देखूँ मैं ।

(प्रस्थान ।)

हुजिर—रुस्तमका शिविर यही है सुहराब ! मैं
बात न बताऊँगा परन्तु यह तुमको ।
परिचय कभी नहीं होगा पिता-पुत्रमें ।
चाहता हूँ मैं कि वध रुस्तम करे तुम्हें;
रञ्जित तुम्हारे रक्तसे ये बाहु करके
भेटूँगा सहर्ष अफरीदाको इन्हींसे मैं ।

[हुमान और बर्मानके साथ सुहराबका पुनः प्रवेश ।]

सुहराब—शिविर हुमान ! वह सन्मुख जो दिखता
श्यामवर्णवाला, किसका है, तुम्हें ज्ञात है ?

हुमान (बर्मानकी ओर देखकर)—नहीं वीर ! ज्ञात नहीं ।

सुहराब (बर्मानसे)— जानते हो तुम क्या ?

बर्मान—मै भी नहीं जानता हूँ ।

सुहराब— रुस्तम नहीं हैं वे ?
देखो,

बर्मान— नहीं वीरवर ! रुस्तम नहीं हैं वे ।

सुहराब—देखो तुम हुमान ! बर्मान ! पिता मेरे हैं
रुस्तम । करूँगा नहीं उनके विरुद्ध मैं
युद्ध । अनजाने भी पिताके प्रतिपक्षमें
पकड़े न पुत्र तलवार कभी जिसमें ।
कहो वीर ! सत्य कहो, अनुकम्पा करके,
व्यक्ति वह रुस्तम है या कि नहीं ।

बर्मान— है नहीं
रुस्तम, कुमार ! सत्य बात कहता हूं मैं ।
झूठी बात बोलो, मै कहूँगा किस हेतुसे ?

(सुहराबने थोड़ी देर शिविरकी ओर देखकर दीर्घ निश्वासके साथ प्रस्थान किया।)

बर्मान—देखना हुमान ! जान पावे नहीं जिसमें ।

हुमान—नहीं, सुहराब कभी जान सुनके भी क्या
मारेगा पिताको ?

बर्मान— खूब सावधान रहना ।

[दोनोंका प्रस्थान ।]

हुजिर—आशा रखते हैं ये कि रुस्तमको रणमें
निहत करेगा सुहराब । यदि हो यही,
हानि क्या है ? मारके पिताको सुहराब भी
पीछे फिर आत्मघात निश्चय करेगा ही
सच्ची बात जानने पै । कोई भी मरे न क्यों,
होगी प्रतिहिंसा पूर्ण मेरी सब भाँतिसे ।

चौथा दृश्य ।

स्थान—समनगाँके राजअन्तःपुरके कमरेकी छत ।

काल—सायाह्न ।

[तहमीना अकेली बैठी गा रही है ।]

(गीत)

हेरत बाट रहूँगी निसि-दिन,
चाहै दरसन होय न होय ।
दूर रहौ वा नियरे, राखौ-मत राखौ मन माहिं ।
और नाहिं कछु चाहत, कवनहुँ अब अभिलाषा नाहिं ॥
अवहेला-अपमान प्रान ये लै हैं हियो पसाँरि ।
प्रेम कियो तो कबहूँ, केवल यही बात उर धारि ॥
तौहू तुम हित निसि निसि जागत, नैना निंदिया खोय ।
ऐसहिं जुग जुग, जनम जनम हौं वहन करूँगी रोय ॥

तहंमीना—इतने दिनों पर भी वत्स सुहराबका कोई समाचार क्यों नहीं मिला ! कोई विपद तो नहीं हुई ! नहीं—रुस्तम जिसके पिता हैं, उसे विपद क्या ! हायरे ! माताका मूढ़ मन ! सदैव सन्तानकी विपदकी ही चिन्ता किया करता है । सन्तानके सुख, सम्पत्ति और उत्सवके बीच भी माँके मनमें उसकी विपदकी ही छाया पड़ती है !

[राजा और जुआराका प्रवेश ।]

राजा—तहमीना, तुमने सुना ?

तहमीना—क्या पिताजी ?

राजा—तुम्हारे बच्चे सुहराबने तो एकदम अवाक् कर दिया !

तहमीना—क्या क्या !—यह तो भाई जुआरा है ! सुहराब कहाँ ?

राजा—सुहराबने ईरानका प्रवेशदुर्ग जीत कर उस पर अधिकार कर लिया है !

तहमीना—धन्य पुत्र !

राजा—किन्तु—

तहमीना—फिर किन्तु क्या ?

राजा—किन्तु पारसका राजा अपनी समस्त सेना लेकर उस दुर्ग पर आक्रमण करनेको आया है और रुस्तमने पारसके राजाके साथ योग दिया है।

तहमीना—पारसके राजाके साथ ?

राजा—हाँ, पारसके राजाके साथ।

तहमीना—पारसके राजाके साथ ? आपने सुननेमें भूल की है।

राजा—क्यों बेटी ? इसमें आश्चर्यकी क्या बात है ? उन्होंने तो सदैव ही पारसके राजाके पक्षमें युद्ध किया है।

तहमीना—किन्तु उनके विपक्षमें उनका पुत्र सुहराब जो है ?

राजा—सुहराब उनका पुत्र है, यह बात उन्होंने किससे सुनी और कब सुनी ?

तहमीना—यह बात वे नहीं जानते !—सर्वनाश !

राजा—क्या सर्वनाश !

तहमीना—उनके साथ यदि सुहराबका युद्ध हो और वे उसे न जानें ?

राजा—सुहराब उन्हें बन्दी कर लेगा, बस इतना ही ।

तहमीना—पिता, आप क्या कहते हैं ?

राजा—बिलकुल सच्ची बात । (प्रस्थान ।)

तहमीना—यह क्या !—भाई जुआरा ! तुम सुहराबको इस प्रकार मृत्युके मुखमें छोड़ कर चले आये !

जुआरा—मैं क्या करूँ बहिन ? रुस्तमने पारस्यराजके साथ योग दिया है, यह सुनकर मैंने सुहराबसे वह दुर्ग छोड़ कर चले आनेको कहा। सुहराबने नहीं सुना । वह बोला—मैं अपने पितासे भेट ही करना चाहता हूँ । लाचार होकर मैं तुम्हें खबर देने चला आया ।

तहमीना—रुस्तमके पास जाकर उन्हें बतलाया क्यों नहीं ।

जुआरा—उनसे भेट होना कठिन था—और इस पर भी वे कैसे विश्वास करेंगे ! वे तो जानते हैं कि उनके पुत्र नहीं है ।

तहमीना—इसीसे तुम बच्चेको असहाय छोड़कर चले आये ! हाय ! क्या किया ! क्या किया !

जुआरा—मैं क्या करूँ । (प्रस्थान ।)

तहमीना—यह क्या ! मेरा मन सहसा इतना उद्वेलित क्यों हो उठा ! इसका उपाय !—इसका उपाय !

[सारिया और हमीदाका प्रवेश ।]

तहमीना—इसका उपाय हमीदा ?

सारिया—सुना है । इसका उपाय एक भगवान हैं ।

हमीदा——भगवान जो करें।

तहमीना——नहीं सारिया, नहीं हमीदा, मैंने समझ लिया है। भगवान मेरे लिए सर्वनाशकी सृष्टि करते हैं। एक भावी अमङ्गलकी छाया मेरे प्राणाङ्गणमें आकर पड़ती है। एक विपद्‌की पदध्वनि सुनाई पड़ती है। मैं स्पष्ट देखती हूँ कि मेरे पति और पुत्र युद्धक्षेत्रमें खड़े होकर एक दूसरेकी ओर आँखें लाल कर रहे हैं। कोई किसीको पहचानता नहीं है! कोई पहचनवाता नहीं है! कोई नहीं! मैं जाऊँगी ——मैं जाऊँगी। (प्रस्थान।)

पाँचवाँ दृश्य।

स्थान—उसी दुर्गके बाहर रुस्तमका शिविर।

काल——सायाह्न।

रुस्तम——सुनता हूँ वीरताकी बातें सुहराबकी,
देखता हूँ कीर्ति और सोचता हूँ——हो तो हो
पुत्र यह मेरा। किन्तु सम्भव नहीं, कभी
मेरे तो हुआ ही नहीं पुत्र।—फिर क्यों है यों!
क्यों है फिर—

[काऊस का प्रवेश।]

रुस्तम—— महाराज! रणका क्या हाल है?

काऊस——मेरी सैन्य विक्रमसे वीर सुहराबके
नष्टप्राय हो चुकी है! तो भी तुम युद्धसे
विरत!

रुस्तम—— नरेन्द्र! सोचता था, जरा देखूँ
विक्रम तुम्हारा। तुम्हें अपने मुकुटकी

रक्षाका अवसर दिया था और साथ ही
समय दिया था भली भाँति जान लेनेका
रुस्तमको । क्यों कि उसे जाना नहीं तुमने ।

काऊस—पारसके गर्व ! अवसाद अब छोड़ दो;
उतरो तुरन्त रणमध्य, शत्रु सैन्यको
प्रलय समान हाँ, उड़ा दो एक फूँकसे ।
उठो, अस्त्र धारो, करो रक्षा इस राज्यकी
वीरवर !—रूक्षता दिखाई कभी मैंने हो
मोह-मद युक्त होके, तो उसे क्षमा करो।
सोच देखो वीर ! बस, एक तुम्हीं मेरे हो
आसरा, भरोसा वा सहाय तथा सम्पदा ।

सुहराब (नेपथ्यमें ।)—कहाँ है भूप काऊस ! कायरसा बैठा है
छिपके शिविर बीच, बाहर निकल आ ।—
नीच, डरपोंक ।

काऊस— सुना ! यह सुहराब ही
करता उपहास है ! सुवीर आज उससे
बचा करे व्यङ्ग्य हो सहाय तुम जिसके
वीरोत्तम रुस्तम ! उतर पड़ो युद्धमें,
पकड़ तुम्हारे पैर करता हूँ प्रार्थना ।

रुस्तम—पारसके महाराज ! कोई डर है नहीं ।
होता अवतीर्ण हूँ अभी मैं रणक्षेत्रमें ।
अश्व कसनेका दूँ निदेश ।—अभी जाता हूँ ।

(प्रस्थान ।)

काऊस—सोता सिंह जाग उठा । अब डर है नहीं ।
कौन ? अफरीदा ?

[अफरीदाका प्रवेश ।]

अफरीदा— महाराज ! यह मै ही हूँ ।
काऊस—वीरबाला ! भीति नहीं; रुस्तम समरको
सजता है ।
अफरीदा— होगा तो पिताके वध-वैरका
शीघ्र प्रतिशोध । शीश अब सुहराबका
लोटेगा धरातल पै ।—क्या ही समुल्लास है !
काऊस— हिंसावृत्ति कितनी विलक्षण तुम्हारी है !—
तुम रमणी हो !
अफरीदा— हाँ, वही हूँ मैं महीपते !
नारी है नदीकी भाँति—प्रीतिमती होती है
सुखदा है नारी तब—मन्द मृदु स्वरसे
गाती है, नाचती है, हँसती है सुहास्यसे;
गाढ़ स्नेहराशिसे प्रतप्त निज तीरको
करती है स्निग्ध और उर्वर; परन्तु हो
क्रुद्ध जब—उच्च उच्च तरल तरङ्गोंसे,
भीम हुहुङ्कार कर, भग्न-मग्न दोनों ही
कूलोंको उखाड़ नष्ट भ्रष्ट कर जाती है ।
वारिद जो स्निग्ध वृष्टिधारा बरसाते हैं
वे ही मेघ महराज ! बिजली गिराते हैं ।
नारी जब सुन्दरी हो, कौन तुल्य उसके

सुन्दर है ? किन्तु जब होती है भयङ्करी,
उस-सा भयङ्कर न और कुछ होता है।
पाती सुहराबको, कहीं मै अभी, तो उसे
बाघिनीकी भाँति छिन्न भिन्न कर डालती ।—
पीछे, फिर पीछे मैं गलेसे लग उसके
आर्द्र कर डालती भले ही अश्रुनीरसे
उसका मुखारविन्द; बार बार चूमके
कर देती अच्छादित शीश वह उसका
छिन्न-रुधिराक्त ।—तुम शत्रु तो अवश्य हो
वीर सुहराब ! तो भी देखती हूँ चक्षुसे
वीरता तुम्हारी आज और महागर्वसे
नयनोंमें अश्रुनीर भर भर आता है—
गर्व है यही कि बस चाहता मुझे ही है
ऐसा सुहराब वीर । किन्तु किया तुमने
मेरे जो पिताका वध, चाहती हूँ बदला—
हिंसा, प्रतिहिंसा—प्रतिशोध चाहती हूँ मैं। (प्रस्थान ।)

काऊस—कैसी है विचित्र ! यह बात है अचम्भेकी ! (प्रस्थान ।)

[नारियोंका प्रवेश ।]

गीत ।

ए हो,   भुवन भुलानें आई हैं हम नारी ।
ए हो,   गृहलक्ष्मी हम कभी और हम
कभी सर्वसंहारी ॥
अर्ध कठिन हम, अर्ध तरल हम;
अर्ध अमृत हम, अर्ध गरल हम;
अर्ध कुटिल हम, अर्ध सरल हम;

अर्ध अश्रु हम, अर्ध हास सुकुमारी।
झंझातुल्य अधीर बड़ी हम,
प्रलय तुल्य हैं स्निग्ध, प्रशान्त;
वज्र तुल्य भीषण महान्ध हम,
कुसुम तुल्य हैं कोमल, कान्त;
हमीं गेहमें सब विपदायें
और बलायें लाती हैं,
व्याधि समान जलाती हैं;
सेवा दासी सम करती हैं;
देवीतुल्य प्रीति प्यारी॥

छठा दृश्य।

स्थान—उसी दुर्गके बाहर समराङ्गणका एक प्रान्त।

काल—सायाह्न।

सुहराब—वीर हो अवश्य तुम। इतने विलम्ब लौं
तुल्य पराक्रमसे लड़ा है सुहराबसे
अद्यावधि कौन वीर? बोलो, तुम कौन हो?
जानता नहीं हूँ तुम्हें—रुस्तम हो क्या तुम्हीं?

रुस्तम—रुस्तम!
लड़ेगा अरे! रुस्तमके साथ क्या
बच्चा बीस वर्षका तू!

सुहराब— रुस्तम तुम्हीं हो क्या?
सत्य कहो वीर!

रुस्तम— नहीं, रुस्तम नहीं हूँ मैं।—
बच्चे! फिर युद्ध कर, युद्ध कर, जान ले—

द्वन्द्वयुद्ध बीच आज उतरे इसी लिए
दोनों हम, युद्धके फलाफलका आज ही
निर्णय करेंगे।

सुहराब— वीर! जानता हूँ मैं इसे,
होगी हार द्वन्द्वयुद्ध बीच आज जिसकी
हार मानी जायगी उसीकी इस युद्धमें।

रुस्तम— आओ, अब युद्ध करो; मैं विश्रान्त हूँ अभी।

सुहराब—युद्ध करो वीर! जब वासना तुम्हारी हो,
इच्छा हो तुम्हारी, हट जाना तब युद्धसे।
करूँगा अपेक्षा। मुझे कुछ भी विरामका
नहीं है प्रयोजन।

रुस्तम— सुनो हे वीर! क्षान्त हो।
देखो, दिन डूबता है। मेरे समकक्ष हो
अस्त्रयुद्धमें तो तुम। मल्लयुद्ध होने दो।

सुहराब—अच्छी बात। आओ वीर! मल्लयुद्ध ही सही।

(दोनोंने तलवारें रख दीं।)

रुस्तम—याद रहे वीर! कि जो पक्ष धराशायी हो
विजयी करेगा वध उसका तुरन्त ही;—
पद्धति है पारसके मल्लयुद्धकी यही।

सुहराब—ठीक है! इसीके अनुसार तब युद्ध हो।
पीछे मैं हटूँगा नहीं ऐसी किसी बातसे।
किन्तु युद्ध करनेके पूर्व फिर तुमसे

प्रश्न करता हूँ,—तुम रुस्तम नहीं हो क्या ?
सत्य कहो वीरवर ! रुस्तम तुम्हीं हो तो
वध न करूँगा मैं तुम्हारा।

रुस्तम— बड़ी स्पर्द्धा है !
तुम न करोगे कृपा-अनुकम्पा करके
रुस्तमका वध न करोगे दयाभावसे,
वीर बीस वर्षके !—यथार्थ बड़ी स्पर्द्धा है !

सुहराब—नहीं वीर ! नहीं वीर बात नहीं स्पर्धाकी।—
जानते हो, रुस्तम है मेरे कौन ?

रुस्तम— जानना
चाहता नहीं मैं। करो युद्ध करो, मुझसे।
जाने रहो, यदि तुम होगे धराशायी तो
मारूँगा छुरीसे तुम्हें; और धराशायी मैं
हूँगा यदि तो तुम छुरीसे मुझे मारोगे।

सुहराब—अच्छी बात, यही सही।

रुस्तम— प्रस्तुत हो ?

सुहराब— सर्वदा।

(दोनोंका मल्लयुद्ध। रुस्तम धराशायी हुआ। सुहराबने रुस्तमकी छातीमें घुटना अड़ाकर, छुरी निकाल उसे तौला।)

सुहराब—मारूँ अब वीर ?

रुस्तम— नहीं, क्योंकि वार दूसरी
हो जो भूमिशायी, उसे मारनेकी रीति है;—
एक वारहीमें नहीं।

सुहराब—— तो उठो, यही सही ।

(सुहराबने रुस्तमको छोड़ दिया और रुस्तम उठ बैठा ।)

सुहराब——आओ फिर ।

रुस्तम—— वीरवर ! सन्ध्या अब हो गई ।——
होगा यह युद्ध कल, आज तुम क्षान्त हो ।

सुहराब——अच्छी बात । जाओ तुम अपने शिविरमें ।

रुस्तम——तो कल सबेरे यहीं,

सुहराब—— अच्छा, हाँ, सबेरे ही ।

(रुस्तमने सिर झुकाये धीरे धीरे प्रस्थान किया । जब तक वह दृष्टिपथसे बाहर न हो गया तब तक सुहराब एकटक दृष्टिसे उसकी ओर देखता रहा ।)

सुहराब——यह जन कौन है ? क्यों इस पर इतना
प्रेम है उमड़ता ? निहार कर हारसे
नतशिर, म्लानमुख, नीचे नेत्र इसके,
होकर क्यों मेरे प्राण चाहते हैं लोटना
दौड़ चरणोंमें, क्षमा-याचनाके भावसे ?
यह क्या पहेली है !——नहीं है इस जयमें
हर्ष । आज छाया है विषाद मेरे मनमें ।

[हुमान और बर्मानका प्रवेश ।]

हुमान——यह क्या किया ?

बर्मान—— क्या किया ?

सुहराब—— बन्धुवर ! क्या हुआ ?

हुमान——जीत कर छोड़ दिया क्यों फिर विपक्षीको ?

सुहराब——क्या अन्याय मैंने किया ?

बर्मान— मारा उसे क्यों नहीं ?
दलकर सर्पशिर पैर तले, उसको
छोड़ दिया।—क्या किया ?

सुहराब— सबेरे कल फिर भी
होगा यह युद्ध सखे !

हुमान— क्या किया हा ! क्या किया !
मारा नहीं !

सुहराब— मित्र ! नहीं मार सका उसको।
तीक्ष्ण छुरी छातीपर तान कर बोला मैं—
" मारूँ अब ? " वैसे ही न जानें कहा किसने
" सावधान ! क्या कर रहा है मूढ़ ? " उसको
मैंने क्षमा माँगनेके पूर्व ही क्षमा किया।
उसने कहा जो " सुहराब ! " रणारम्भमें।
वह स्वर जैसे हो परिचित सदैवका !
उसने धरे जो हाथ मेरे मल्लयुद्धमें,
पक्ष-से समेट कर मेरे इस मनने
आश्रयकी याचनाकी वक्ष पर उसके।—
क्यों ! क्यों ! यह क्या है सखे ! लड़ता हूँ किससे ?

हुमान—शान्त करो चित्त वीर ! सोहता है क्या तुम्हें
दीन शिशुतुल्य यह क्रन्दन करुण भी ?
निष्ठुर हो शूर ! करो क्रूर मृदु मनको।
नहीं है गृहाङ्गण, कठोर यह है बड़ा
भीम रणक्षेत्र, नर-रक्तसे रँगा हुआ।

बर्मान—दुर्गको चलो हे वीर ! देखो, रात हो गई। (निष्क्रान्त।)

सातवाँ दृश्य।

स्थान—रुस्तमका शिविर।

काल—रात्रि।

[अफरीदा एकाकिनी।]

अफरीदा—सुहराब! सुहराब! यह कैसे विलक्षण मोहपाशमें तुम मुझे जकड़ते जा रहे हो? वीर! जिस दिन, जिस समय, युद्धक्षेत्रमें पहले पहल तुम्हारे मुँहकी ओर देखा, उस समय ऐसा मनमें आया—यह क्या! इस जगह तो पृथ्वीके समस्त सौन्दर्य्यका समावेश है! यह तो समस्त आनन्दकी लीलाभूमि और, समस्त अन्वेषणकी प्राप्ति है! मनमें आया—मानों प्रतिभा उस जगह रक्त-मांससे सज्जित होकर आई है, प्रणयकी एक पवित्र कामना उस मुखमें प्रस्फुटित हुई है! यह कैसा सौन्दर्य्य है! यह कैसा आनन्द है! और, यह कैसी महिमा है! इसके बाद—उस मुँहको भूलनेकी जितनी ही चेष्टा करती हूँ, वह उतना ही परिष्कार आकार धारण करता जाता है! जितना आग बुझाने जाती हूँ उतनी ही वह प्रज्वलित हो उठती है!—सुहराब! तुम यदि मेरे देशके शत्रु न होते, मेरे पिताका वध करनेवाले न होते!—नहीं, मैं उस बातको मनमें स्थान न दूँगी।—तुम मेरे शत्रु हो। तुम्हारे प्रति अपने कर्तव्यपथसे मैं विचलित न होऊँगी।—कौन? महाराज?

[काऊसका प्रवेश।]

काऊस—युद्धका क्या परिणाम हुआ? रुस्तम अभी तक आये नहीं, क्यों?

अफरीदा—वे शत्रुका वध किये बिना लौटेंगे नहीं। मैं उनके शिविरमें, इसी लिए, उसी संवादकी प्रतीक्षा कर रही हूँ! रुस्तम सुह-

राबका वध करेंगे। निश्चित रहिए। मैं एक शत्रुका वध कर चुकी हूँ; रुस्तम और एक शत्रुका वध करेंगे।

काऊस—तुमने किसका वध किया है अफरीदा?

अफरीदा—उसी विश्वासघातक, देशशत्रु हुजिरका। कल समरक्षेत्रमें उसे देख पाया। सुहराबने उसे छोड़ दिया था। वह पापी हमारे शिविरमें लौट आया था। मैंने उसे मार डाला।

काऊस—तुमने अफरीदा?

अफरीदा—हाँ, मैंने महाराज। परन्तु अब भी मेरे पिताके वधका प्रतिशोध पूरा नहीं हुआ। अब भी सुहराब बाकी है।

(नेपथ्यमें तूर्य्यध्वनि।)

अफरीदा—यह क्या!—यह रुस्तमकी विजयकी तूर्य्यध्वनि है।

काऊस—यही तो रुस्तम है!

[धीरे धीरे रुस्तमका प्रवेश।]

काऊस—वीर! तुम सुहराबको मार आये हो। आओ, मैं तुम्हारा आलिङ्गन करूँ।

रुस्तम—नहीं महाराज। आजके युद्धमें मैं ही पराजित हुआ हूँ।

काऊस (अत्यन्त विस्मयके साथ)—क्या! तुम पराजित हुए हो?

रुस्तम—हाँ महाराज! पहले सेना सेनामें युद्ध हुआ। इससे हमारी सेनाका अधिक नाश होने पर मैंने प्रस्ताव किया कि द्वन्द्व युद्धसे जयकी मीमांसा हो। सुहराबने उसे भी मान लिया। फिर द्वन्द्व युद्धमें मैं पराजित हो गया। कल फिर युद्ध होगा।

अफरीदा—क्या! तुम सुहराबको नहीं मार सकते रुस्तम? धिक्कार है तुम्हारे बाहुबलको। एक बीस वर्षके बालकसे हारकर तुम लौट

आये? प्राण नहीं दे सके? कापुरुष! कल मैं ही युद्धके लिए जाऊँगी। और कुछ न कर सकूँगी, प्राण तो दे सकूँगी।—धिक्। (प्रस्थान।)

काऊस—अद्भुत है।

रुस्तम—जाइए महाराज।

(काऊसका प्रस्थान ।)

रुस्तम—मेरी शक्ति कहाँ गई! एक बालकसे हार गया—और वह ऐसी हार! जो रुस्तम यक्ष, रक्ष और दैत्यकुलको निर्मूल करके घूमता था, जिसके नामसे संसार काँपता था, उसकी वीरताका आज यह परिणाम! बालकने युद्धमें जब वारवार जिज्ञासा की—"तुम क्या रुस्तम हो?"—मैंने झूठ ही कह दिया कि—"मैं रुस्तम नहीं हूँ।" क्यों?—वह इसी लज्जासे कि रुस्तम एक बीस वर्षके बालकके साथ युद्धमें उतरा है—और वह उसको हरा नहीं सका। वह इस लिए कि मेरे निकट मेरी अपेक्षा रुस्तमका यश अधिक प्रिय है। मैं हार गया हूँ; किन्तु बालक यह स्पर्धा न करे कि युद्धमें रुस्तमको हरा दिया। परन्तु इस समय बालक न जाने, संसार तो शीघ्र ही जान लेगा कि रुस्तम एक बच्चेसे हार गया है! संसार जो हँसेगा। ओह! अपमानसे मेरे अङ्ग-प्रत्यङ्ग जले जाते हैं—भस्म हुए जाते हैं।—ईश्वर! कलके युद्धमें ऐसी शक्ति दो कि शक्तिबलसे सुहराबको युद्धमें मार सकूँ। इसके बाद और कुछ न चाहिए। कल जय चाहिए। मेरे भविष्यत्का सुख, शान्ति और सम्पत्ति सब ले लो, केवल विजय प्रदान करो, और कुछ नहीं चाहता। (कमरेमें उत्तेजित भावसे टहलने लगता है और फिर पुकारता है—) "द्वारपाल।"

[द्वारपालका प्रवेश]

रुस्तम—सुरा, नृत्य और गीत।

(द्वारपालका प्रस्थान ।)

रुस्तम—इस दुःखको सुरामें डुबा दूँ, संगीतमें बहा दूँ और नृत्यमें लुप्त कर दूँ।—नहीं तो यह असह्य है।

(हाथमें सुरापात्र लिये नर्तकियोंका प्रवेश और रुस्तमके पास सुरापात्र रखकर फिर नृत्य और गीत। रुस्तम सुरापान करता है।)

(गीत)

ला प्या—ला, प्या—ला !
भर प्याले पर प्या—ला !
ठंढी करूँ आज मदिरासे
इन प्राणोंकी ज्वा—ला !
शोक और अपमान नहीं कुछ—
सब जाऊँगा भूल तुरन्त।
सुखके पंखोंसे तैरो रे !
हुआ विराग-दुःखका अन्त।
छूटा इनसे पा—ला ॥
किसका जीवन !—वह तो मदिरा
बिम्ब तुल्य उठ गिरता हाल !
किसकी जय !—कंकालसार, गल
धारे मुण्डमाल—कंकाल !
कौन हुआ मतवा—ला !
कितना क्यों न बजाओ डंका—
चलते ठीक मृत्युकी ओर।
जितने बचो, मरो उतने ही,
जितना सोचो—ओर न छोर !
बस, ज्वालाकी मा—ला !

आठवाँ दृश्य ।

स्थान—नदी किनारे समराङ्गन ।

काल—प्रभात।

[एकाकी सुहराब ।]

सुहराब—जान नहीं सकता मैं ।—वीर वह विक्रमी;—
सिन्धु-सा विशाल वक्ष, पर्वत-सा गर्वसे
उन्नत शरीर, वज्रज्वाला, दीर्घ नेत्रोंमें,
कण्ठमें गभीर स्निग्ध नाद घनघोष-सा;
सम्भव है और किसी जनका,—जो वे नहीं
रुस्तम जनक मेरे ?—एक महा दुबिधा
भिन्न करती है आज मानों मुझे मुझसे ।
आज मै नहीं हूँ मैं, विचार यही होता है
दीखता है शून्यगर्भ गौरव विजयका ।
अङ्गोंसे शिथिल शौर्य्य जीर्ण शीर्ण गेह-सा
खस रहा आप ही ।—पिता ! पिता ! पिता ! पिता !

[रुस्तमका प्रवेश ।]

सुहराब—कौन ? अच्छा ? वीर, तुम आगये ?
रुस्तम—　　　　　　　　　　हाँ, आगया ।
बच्चे सुहराब ! सुनो, होगा अन्त युद्धका
आज । आओ, युद्ध करो । याद रहै, आज ही
मेरा या तुम्हारा शव पृथ्वी पर लोटेगा ।

सुहराब—क्षान्त हो हे वीरवर ! त्यागो इन अस्त्रोंको ।
आओ बलशील ! आज हम तुम दोनों ही

बैठें यहाँ,—हाथमें हो हाथ, वक्ष वक्षमें,
ऊर्ध्वमुख होके क्षमा माँगें तात, दैवसे।
वैरको बहा दें महास्नेहके प्रवाहमें।
तुम्हें मारनेको हाथ मेरे नहीं उठते,
प्राण नहीं चाहते हैं। दुर्निवार स्रोतसे
कोई खींचता-सा है तुम्हारी ओर मुझको।
मानों तुम शत्रु नहीं; मानों चिरकालके
बन्धु हो पुरातन। न जानें मन मेरेसे
उठता गभीर एक क्रन्दन करुण क्यों?
—आओ, प्रियबन्धु! आओ, आलिङ्गन दो मुझे।

रुस्तम—कभी नहीं; स्नेहअनुकम्पादिक जितनी
कोमल प्रवृत्तियाँ हैं, आज उन्हें मनसे
मैंने है निकाल दिया। सारी साधनाओंको
केन्द्रीभूत मैंने किया एक अभिलाषमें,
वह है तुम्हारा वध; हार-अपमानने
जर्जर किया है चित्त। ज्वाला वही देहमें,
मस्तकमें, शोणितमें, जलती—जलाती है!
आयुध लो।

सुहराब— यही है? तो माँग कर लेता हूँ
तुमसे मैं हार और वह अपमान भी।
आओ बन्धु! आज मैं तुम्हारी सर्व सेनाके
सामने स्वजीवनकी माँग लूँगा तुमसे
घुटनोंको टेक भीख। बन्धु, अस्त्र रख दो।

रुस्तम—सुना नहीं चाहता मैं बातें ये स्त्रियोंकी-सी ।
आया आज युद्धमें हूँ भीम रुद्र तेजसे,
बाँधा अपनेको आज मैंने भीष्म प्रणमें,
करूँगा तुम्हारा वध अथवा मरूँगा मैं;
या तो यह शीश आज पृथ्वी पर लोटेगा
रणमें तुम्हारे चरणोंके तले अथवा
लौटेगा शिविरको सुगर्वोन्नत जयसे ।

सुहराब—सुनो बन्धु !

रुस्तम—　　　　कुछ भी सुना मैं नहीं चाहता;
आज निज पुत्रकी भी मृत्यु-कातरोक्तियाँ
मुझको टला न सकें, मेरा यही प्रण है !
रक्षा करो अपनी । (आक्रमण)

सुहराब—　　　　हाँ ? तो फिर यही सही ।

(दोनोंका युद्ध । थोड़ी देरमें सुहराबकी तलवारके आघातसे रुस्तमकी तलवार पृथ्वीपर गिर पड़ी ।)

रुस्तम—क्षुब्ध नहीं; रिक्तहस्त समर करूँगा मैं ।
युद्ध करो । तेज तलवार है तुम्हारी जो
बैठे इन कन्धोंपर; डरता नहीं हूँ मैं ।—
वीरकी ही भाँतिसे मरूँगा मैं !

सुहराब—　　　　कभी नहीं—
मैं भी तलवार त्याग करता हूँ अपनी ।
(तलवार रख कर ।)
अच्छा, अब आओ, बाहुबलसे ही युद्ध हो
(मल्लयुद्ध ।)

(शीघ्रतासे अफरीदाका प्रवेश ।)

अफरीदा—धन्य धन्य—यहीं तो उदार सुहराब है !
है चिर महान् ! किन्तु तो भी सुहराबको
छोड़ मत देना । मार डालो—मार डालो हाँ,
स्वीय सिंहविक्रमसे रुस्तम ! पछाड़ दो ।

सुहराब—कहाँ पिता !

(पृथ्वी पर गिर पड़ा। रुस्तमने उसकी छातीपर चढ़कर और छुरी लेकर कहा।)

रुस्तम— वीर सुहराब ! याद कर लो
माता-पिता आदि जो तुम्हारे जहाँ हों उन्हें,
अन्तिम मुहूर्त है तुम्हारा यही, जान लो ।
मरनेको प्रस्तुत हो

सुहराब— पहली ही बार क्या !
रीति है तुम्हारे देशकी क्या वीर ! ऐसी ही ?

रुस्तम—वार पहली है यही और यही दूसरी ?

(छातीमें छुरीका आघात ।)

सुहराब—आह ! मरा, माँ ! मै मरा, हा पिता ! पिता ! पिता !

रुस्तम—मर जाओ बालक ! क्या गौरव विजयका
खर्व कर दोगे तुम मेरा ! मरो शीघ्र ही ।

(फिर अस्त्राघात और प्रस्थान।)

अफरीदा—मेरे पितृघाती, मरो ! आज हाथ दोनों ये
रञ्जित करूँगी मै तुम्हारे इस रक्तसे !

(रक्तसे हाथ रँग कर।)

यही रक्त—यही रक्त, अब भी जो उष्ण है
जीवनके तापसे तुम्हारे, इसी रक्तसे
पूर्ण प्रतिशोध आज हो पिताकी मृत्युका ।

सुहराब—अफरीदा! आज कर देना क्षमा मुझको।

अफरीदा—वीर सुहराब! वीरचूडामणि! तुम हो
आज गिरे न्यायहीन युद्धबीच; जाते हो—
जाओ!—पर साथ मैं भी जाऊँगी, न छोड़ूँगी।—
ठहरो तनिक देर, देखो अफरीदाको।—
(अपनी छातीमें छुरी मारकर गिरती है।)
पैरोंमें तुम्हारे!

सुहराब— अफरीदा! यह क्या किया?

अफरीदा—ठीक ही किया है।
—सुहराब! तुम्हें चाहा था,
चाहूँगी। तुम्हारे और मेरे बीच एक था
भारी व्यवधान—वह मरण पिताजीका,
हो पाती तुम्हारी मैं न जीवनकी सङ्गिनी।
भारी व्यवधान वही आज दूर हो गया,
आज मै इसीसे हूँ तुम्हारी मृत्यु-सङ्गिनी!
आओ प्राणनाथ—एक वार इस वक्षपै!
प्रथम यही है और अन्तिम भी है यही।

सुहराब—आओ अफरीदा!
तब आओ इस वक्ष पै
प्राणप्रिये, आज इस जीवनकी सन्ध्यामें।

अफरीदा—प्रियतम! विश्व अन्धकार हुआ आता है—
लाओ हाथ प्राणाधिक! आज हम लोगोंकी
साथकी सुहागरात—(मृत्यु।)

सुहराब— वीरनारि! ठहरो;
ठहरो हे प्राणाधिके! मैं भी साथ आता हूँ।

[काऊस और सैनिकोंके साथ रुस्तमका प्रवेश]

रुस्तम—यही वह वीर देखो, लोटता है भूमि पै ।

काऊस—धन्य धन्य वीरवर !

निष्कण्टक हो गया
पारसका सिंहासन आज, और क्या कहूँ ?
वीरोत्तम ! आलिंगन अपना दो मुझको ।

(आलिङ्गन करके ससैनिक प्रस्थान ।)

सुहराब—वीर तुम कौन हो ? नहीं मैं तुम्हें जानता ।
मारा तुमने है मुझे न्यायहीन युद्धमें;
जान लेना—कुशल तुम्हारी भी न होगी जो
मेरे पिता रुस्तम कहीं भी सुन पायँगे
हत्याकी कहानी यह !—तममें छिपो न क्यों
चाहे तुम । चाहे घुसो पृथिवीके गर्भमें,
नभमें वा सागरमें किंवा गिरिखोहमें,
मेरे पिता रुस्तम सुनेंगे इस बातको
न्यायहीन हत्या हुई उनके तनयकी—
रहेगा न उद्धत तुम्हारा शीश कन्धोंपै ।

रुस्तम—वीर ! यह क्या कहा ! तुम्हारा पिता कौन है ?

सुहराब—मेरे पिता ?—

विश्वख्यात रुस्तम महाबली ।

रुस्तम—माता कौन ?

सुहराब— माता ? राजतनया तूरानकी—
माँ ! माँ ! तुम्हें नहीं देख पाया इस मृत्युमें ।

हाय ! मैं पिताको ढूँढ़नेके लिए आया था,
किन्तु अवसान हुआ देखनेके पूर्व ही
दिनका ।

रुस्तम—　　　　असम्भव है ! पुत्र यह मेरा है !
मेरे तो हुआ ही नहीं पुत्र !

सुहराब—　　　　　　　　　तुम कौन हो ?

रुस्तम—मैं ही वह रुस्तम हूँ ।

सुहराब—
　　　　　　　　　　रुस्तम !—तभी, तभी,
मेरा मन झूठ नहीं कहता था तब तो,
उठता नहीं था तभी मेरा हाथ तुमको
मार डालनेके लिए ! हा पिता ! पिता ! पिता !

रुस्तम—बालक ! तुम्हारे पास कोई पहचान है ?

सुहराब—खोल देखो वर्म्म यह ।

(रुस्तमने काँपते हुए हाथोंसे कवच खोला)

रुस्तम—　　　　　　　　वर्म्म यह है वही ।
मैंने क्या किया है, पुत्रहत्या कर डाली है—
न्यायहीन रणमें ? हा पुत्र ! सुहराब ! हा !

सुहराब—तात !

(शीघ्रतासे तहमीनाका प्रवेश ।)

तहमीना—　　　कहाँ पुत्र !

सुहराब—　　　　　　माँ ! माँ ! मेरी माँ !

(हाथ बढ़ाता है।)

तहमीना—　　　　　　　　　वही हुआ !
पुत्र सुहराब ! सुहराब ! कहाँ जाते हो ?

रुस्तम—मैंने मार डाला है तुम्हारा पुत्र तहमिना !

सुहराब—लाओ पदधूलि दो, माँ मेरी, पिता ! जाता हूँ
दूर, अति दूरदेश—घोर अन्धकारमें
दो माँ ! विदा। (मृत्यु)

तहमीना— वत्स ! वत्स ! मेरे सुहराब ! हा !
(मूर्च्छित।)

(रुस्तम पत्थरकी मूर्तिकी भाँति खड़ा रहता है।)

नवाँ दृश्य।

स्थान—समराङ्गणका एक भाग।

काल—सन्ध्या।

[एक फकीरका प्रवेश और गीत।]

गीत।

कुछ प्रकाश; कुछ अन्धकार है,
कुछ सुख है, कुछ दुःख-व्यथा—
ना कहते हा ! चुक जाती है
एक प्राणकी एक कथा।
कुछ आलाप
कलह विलाप
कुछ विश्वास और आशा, भय, ए—हो !
साङ्ग नाटिका
गिरै यवनिका
पूरा होता है यह अभिनय, ए—हो !
एक हृदयका एक स्पन्दन—
हो जाता है स्तब्ध शीघ्र सब;

कुछ कुछ हास्य और कुछ क्रन्दन—
थम जाता है यह कलकल रव।
धनका गौरव, यशका गौरव
और रूपकी गरिमा हाय !
एक साथ पलमें जलते हैं
धाँय धायँ कर सब निरुपाय !
ए—हो ! ए—हो !

दसवाँ दृश्य ।

[फिर आठवाँ दृश्य । रात्रि, आँधी, वृष्टि, विद्युत्, वज्राघात । शीर्ण मुख, शुभ्रकेश, पाण्डुवर्ण रुस्तम, उसी प्रकार खड़ा है;—सामने घुटने टेके तहमीना बैठी है; पास ही पूर्ववत् सुहराब और अफरीदाके मृत शरीर पड़े हुए हैं ।]

तहमीना—होनहार थां सो हुआ—लौट चलो घरको
स्वामी ! दीर्घ रात्रिकाल आके चुपचाप ही
हो गया प्रभात ।—तुम निश्चल तथापि हो ।
फिर सो प्रभात दग्ध हो हो कर क्रमसे
फिरसे गया है बुझ घोर अन्धकारमें ।—
तो भी तुम निश्चल हो ! उसी अन्धकारमें
सम्प्रति अपार वृष्टि, झंझा और बिजली
पैशाचिक नृत्य करती हैं, साथ बाजे भी
बजते हैं वज्रध्वनि—निश्चल हो फिर भी—
लौट चलो । निर्निमेष—देख रहे तुम क्यों ?

(हाथ पकड़ती है)

—हाय ! यह पत्थरकी मूर्ति—संज्ञाहीन है,
देखती न सुनती है, एकटक जानें क्या
ताकती है ! एकटक निर्निमेष दृष्टिसे !—
अविचल। स्वामि ! स्वामि ! प्राणेश्वर ! यह क्या !

(पैर पकड़ती है)

[सदाजि, गुदअर्ज और तूसके साथ काऊसका प्रवेश]

तूस—देखो महाराज !—यह देखो, अन्धकार है—
घोर अन्धकार, जिसे करती विदीर्ण है
कभी कभी विद्युच्छटा पीली, यह झंझा है,
वृष्टि और वज्राघात ! मध्य इन सबके
अब भी खड़ा सुवीर रुस्तम है वैसे ही !
झरती है वृष्टिधारा अङ्गोंसे, सुशुभ्र है
केशराशि;—मानों वह पत्थरकी मूर्ति है
वाक्यातीत, घोर परिताप—पड़ी पैरोंमें
रोदनमुखी, सती, पतिव्रता, अभागिनी,
खोये हुए पुत्रकी माँ, दीना ये तहमिना !

काऊस—रुस्तम ! ओ रुस्तम ! सुनो तो जरा, देखो तो !—
सुनता नहीं है, देखता भी नहीं यह तो,
आँखे फाड़ एक टक ताकता है जानें क्या ! ! !

(तो भी रुस्तम उसी तरह प्रस्तरमूर्तिवत् खड़ा रहता है।)

यवनिका।

स्वर्गीय द्विजेन्द्रबाबूका नाटक-साहित्य ।

पाठक यह जानकर प्रसन्न होंगे कि हम बंगालके सर्वोच्च नाटक-लेखक और कवि-श्रेष्ठ **स्वर्गीय द्विजेन्द्रलाल राय**के प्रायः समस्त नाटकोंको प्रकाशित कर चुके हैं। नाट्यसाहित्यके मर्मज्ञोंका कथन है कि इस देशकी किसी भी जीवित भाषाके लेखकोंमें द्विजेन्द्र बाबूकी जोड़का नाटक-लेखक नहीं हुआ। उनकी प्रतिभा बड़ी ही विलक्षण और विचित्र रसमयी थी। वे बड़े ही उदार और देशभक्त लेखक थे। उनके नाटक दर्शकों और पाठकोंको इस मर्त्य-लोकसे उठा कर स्वर्गीय और पवित्र भावोंके किसी अचिन्त्य प्रदेशमें ले जाते हैं। उनके नाटक पवित्रता, उदारता, देशभक्ति और स्वार्थत्यागके भावोंसे भरे हुए हैं। उन्मादक शृंगार और हाव-भावोंकी उनमें गन्ध भी नहीं। द्विजेन्द्रबाबू हास्यरसके और व्यंग्य कविताके भी सिद्धहस्त लेखक थे। अतएव उनके नाटकोंमें इसकी भी कमी नहीं। उनके उज्वल और निर्मल हास्यविनोदको पढ़कर—जिसमें अश्लीलताकी या भण्डताकी एक छींट भी नहीं—आप लोट पोट हो जायँगे। द्विजेन्द्र बाबूके नाटक इस प्रकारके भावों और विचारोंके भण्डार हैं जिनके प्रचारकी इस समय इस देशमें बहुत बड़ी आवश्यकता है।

बंगलाके नाटक-साहित्यमें द्विजेन्द्र बाबूका आसन जगत्प्रसिद्ध कवि रवीन्द्र-नाथ ठाकुरसे भी कई बातोंमें ऊँचा समझा जाता है। स्वयं रवीन्द्र बाबू भी द्विजेन्द्रकी रचनाओं पर मुग्ध हैं। वे बड़े ही निपुण और सूक्ष्मदर्शी समालोचक हैं। उन्होंने 'मन्द्रकाव्य' की समालोचनामें द्विजेन्द्र बाबूकी मौलिकता और अलौकिक प्रतिभाकी जिस प्रकार अकपट और असंकोच प्रशंसा की है, कहते हैं कि उनके द्वारा इतनी अधिक ऊची प्रशंसा बंगसाहित्यमें अब तक और किसी भी कविने प्राप्त नहीं की। सुप्रसिद्ध कवि और समालोचक श्रीयुत देवकुमार राय चौधरी लिखते हैं—

"बंगालमें ऐसा कोई भी कवि नहीं हुआ जो हँसीके गानोंमें, नाट्यसाहित्यमें, व्यंग्य कवितामें और जातीय भावोंको जीवित करनेमें, द्विजेन्द्रकी बराबरी कर सके। उनकी रचना कवित्वसे कमनीय, मौलिकतासे उज्ज्वल, विशुद्ध रुचिपरायणतासे मनोज्ञ और सद्भावोंसे परिपूर्ण है। वे एक साथ कवि, परिहास्य-रसिक, दार्शनिक, समालोचक, प्रबन्धलेखक और नाट्यकार थे।"

'द्विजेन्द्रलाल' नामक ग्रन्थके लेखक श्रीयुत बाबू नवकृष्ण घोष लिखते हैं—

"द्विजेन्द्रलालके नाटकोंने नाट्यसाहित्यमें उन्नत और विशुद्ध रुचिका स्रोत प्रवाहित करके और नवीन तथा आगामी होनेवाले नाटक-लेखकोंको अनुकर-

णीय उच्च आदर्श दान करके बंगलाके नाट्यसाहित्यको स्थायी उच्चसाहित्यकी पदवी पर पहुँचानेमें बहुत बड़ी सहायता पहुँचाई है। द्विजेन्द्रके उच्चश्रेणीके नाटकोंका अभिनय करके बंगालके थियेटरोंने शिक्षित समाजमें जो आदर पाया है, वैसा इसके पहले कभी नहीं पाया था।"

इन सब वचनोंसे पाठक जान सकते हैं कि द्विजेन्द्रलाल किस श्रणीके नाटककार थे।

नाटकोंके अनुवाद बहुत ही सावधानीसे कराये गये हैं। उनका मूलसे मिलान करके संशोधन भी किया गया है। इसके सिवा प्रायः प्रत्येक नाटकमें एक भूमिका है जिसमें उस नाटकके गुणदोषोंकी विस्तृत आलोचना रहती है। आलोचनायें बड़ी महत्त्वकी हैं और इस विषयके मर्मज्ञ विद्वानों द्वारा लिखी हुई हैं। जो लोग नाटक लिखनेकी कलाका अभ्यास करना चाहते हैं उनके लिए तो बहुत ही उपयोगिनी है।

प्रकाशित नाटकोंकी सूची।

दुर्गादास (ऐतिहासिक)। मूल्य	१)
मेवाड़पतन ,,	॥≈)
शाहजहाँ ,,	१)
राणा प्रतापसिंह ,,	१॥)
सुहराब-रुस्तम ,,	॥≈)
सिंहलविजय ,,	१≈)
उस पार (सामाजिक)	१≈)
भारतरमणी ,,	॥≈)
ताराबाई (ऐतिहासिक)	१॥)
नूरजहाँ (ऐतिहासिक)।	१≈)
भीष्म (पौराणिक)	१।)
चन्द्रगुप्त (ऐतिहासिक)	१)
सीता (पौराणिक)	॥−)
पाषाणी (,,)	॥)
सूमके घर धूम (प्रहसन।)	।)

मैनेजर— हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, गिरगाँव, बम्बई।